- नानेश वाणी – 10
  समीक्षण ध्यान : एक मनोविज्ञान

- आचार्य श्री नानेश

- प्रथम संस्करण :
  दिसम्बर 2002, 1100 प्रतियाँ

- मूल्य : 30/–

- अर्थ सहयोगी :
  अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था
  बीकानेर

- प्रकाशक :
  श्री अ.भा.साधुमार्गी जैन संघ
  समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर

- मुद्रक :
  दिलीपकुमार बया "अमित"
  'मिच्छामि दुक्कडम्' हिन्दी मासिक
  12, वीरप्पन स्ट्रीट,साहूकारपेट, चेन्नई–600 079
  दूरभाष : (044) 5383350

प्रकाशकीय

हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य युग पुरुष श्री नानेश विश्व की उन विरल विभूतियो मे हैं जिन्होने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज को सम्यक् जीवन जीने की वह राह दिखाई जिस पर चल कर भव्य आत्माएँ अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष की अधिकारिणी बन सकती है। यद्यपि आचार्य श्री जी के भौतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है तथापि उनके द्वारा चलाये गये विविध अभियानो मे वह सदा ही प्रतिच्छायित होता रहेगा। इस प्रकार उनका यह व्यक्त रूप ही पर्यवसित होकर उस कृतित्व मे समाहित हो गया है जो उनके द्वारा विरचित साहित्य के रूप मे उपलब्ध है। एक क्रान्तिदर्शी आचार्य का यह प्रदेय साहित्य की वह अनुपम निधि बन गया है जो सासारिक प्राणियो के लिये प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता रहेगा। इस स्तम्भ से विकीर्ण होने वाली प्रकाश रश्मियाँ युगो–युगो तक आलोक धारा प्रवाहित करती रहे इसके लिये यह आवश्यक है कि न तो उन साहित्य रश्मियो को क्षीण होने दिया जाये न ही उनकी उपलब्धता बाधित होने दी जाये वरन् आवश्यक यह भी है कि सर्व सामान्यजनो हित उनकी सुलभता सुनिश्चित रखी जाये। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ ने उस अनमोल साहित्यिक धरोहर को "नानेश वाणी" पुस्तक शृखला के अतर्गत प्रकाशित करने का निर्णय किया।

इस सन्दर्भ मे बैंगलोर निवासी सुश्रावक श्री सोहनलालजी सिपानी ने अर्थ सबधी व्यवस्था मे जो सद्प्रयत्न किया, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत कृति पूर्व मे 'समीक्षण ध्यान एक मनोविज्ञान' नाम से प्रकाशित पुस्तक की नई आवृत्ति है। इसमे कुछ सशोधन परिष्करण भी हुआ है। इस कृति के प्रकाशनार्थ अर्थ प्रदान करने हेतु श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था, बीकानेर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना भी अपना दायित्व समझता हूँ।

यद्यपि सम्पादन–प्रकाशन मे पूरी सावधानी रखी गई है तथापि कोई भूल रह गई हो तो सुधी पाठको से निवेदन है कि वे हमे अवगत कराये ताकि आगामी सस्करणो मे भूल का परिमार्जन किया जा सके।

निवेदक

शान्तिलाल सांड

सयोजक

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ भा सा जैन सघ, समता भवन, बीकानेर

अगरचन्द भैरोंदान सेठिया
जैन पारमार्थिक संस्था : संक्षिप्त परिचय

शिक्षण, नैतिक आध्यात्मिक ज्ञान–प्रसार, बहुआयामी सेवा एव सस्कार –चेतना क्षेत्रो मे कीर्तिमानीय व स्तुत्य कार्य करने वाले नर–पुगव सेठिया बधुओ (श्रीअगरचन्दजी व श्री भैरोदानजी) पर बीकाणा, राजस्थान और सेठिया वश ही नहीं, सम्पूर्ण भारतवर्ष गौरवान्वित है। इस परिवार मे जन्मे सेठ श्री धर्मचन्दजी धन्य है, जिनके आत्मजद्वय ने परिश्रम, लगन, निष्ठा व अध्यवसाय से विपुल अर्थोपार्जन तो किया ही, बीकानेर मे श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था रूपी वट वृक्ष का बीजारोपण कर इसे जीवन्त तीर्थ बना दिया। यह एक सुखद व ज्ञातव्य तथ्य है कि इस आत्मनिर्भर सस्था ने अद्यावधि 89 वर्षीय समय–फलक पर अपनी पृथक पहचान बनाई है। और सातत्य का इतिहास सृजित कर अनेक क्षेत्रो मे अनुपम व बेजोड कार्य किया है।

पृष्ठभूमि

सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था की स्थापना महज एक सयोग नही वरन् इसके पीछे थी सेठिया बधुओ की गहन व दूरदर्शी सोच तथा तत्कालीन बीकानेर की परिस्थितियाँ। श्रीमान भैरोदानजी सेठिया स्वय तत्त्वज्ञानी थे और बालवर्ग मे सस्कार चेतना जागृत करना उनका ध्येय था। उस समय बीकानेर मे जैन पाठशाला के अतिरिक्त कोई अन्य सस्था/पाठशाला नही थी, जहा जैन बालको को धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, प्राकृत व व्यावहारिक ज्ञान मिल सके। आप उत्तराध्ययन सूत्र की निम्नाकित गाथा का महत्त्व पूर्णरूपेण जानते थे, जिसमे कहा गया है कि जैसे डोरे सहित सूई कही गिर जाये तो नही खोती, उसी प्रकार श्रुतज्ञान युक्त जीव ससार मे दिग्भ्रान्त नही होता –

जहा सूई ससुत्ता प-डिया वि न विणस्सई।
तहा जीवो ससुत्तो ससारे वि न विणस्सई।।

अत सन् 1913 (वि स 1970) मे आपने सेठिया जैन धार्मिक पाठशाला की स्थापना की। लगभग एक दशक तक अनवरत कार्य करने के अनन्तर आपने उच्च शिक्षा, नैतिक साहित्य प्रकाशन, समाज

सेवा, जन सेवा आदि क्षेत्रों मे नये युग का सूत्रपात किया। आपने "सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था" का गठन कर इसकी व्यवस्था, सार–सभाल हेतु ट्रस्ट, मैनेजिग व जनरल कमेटियाँ नियत की। इसके अन्तर्गत सन् 1915 में प्रकाशन विभाग, 1921 मे कन्या पाठशाला, 1922 में ग्रन्थ भण्डार, 1923 में संस्कृत प्राकृत विद्यालय, सन् 1923 मे समाज सेवा विभाग तथा सन् 1925 में श्राविकाश्रम, सेठिया नाईट कालेज आदि की स्थापना हो चुकी थी। सभी विभाग अपने क्षेत्रो मे कार्यरत थे, परन्तु विधिवत् संस्था के गठन से उनमे स्थायित्व की स्थिति बनी। प्रकाशन के नाम पर तत्कालीन बीकानेर मे सस्था ही प्रथम प्रतिष्ठान था, जिसमे सन् 1924 में सेठिया सा ने निजी प्रिंटिग प्रेस खोला और उसमे नैतिक धार्मिक आध्यात्मिक साहित्य का प्रकाशन प्रारभ किया। इसी क्रम मे सन् 1928 में सस्था ने सठिया जैन छात्रावास भी स्थापित कर दिया, जिसमे रहकर छात्र नैतिक व धार्मिक सस्कारो के साथ व्यावहारिक उच्च ज्ञान प्राप्त करते॥

सस्था की स्थापना व इसके उद्देश्य हेतु सेठिया बन्धुओं की मूर्तियों के नीचे प्रस्तर पट्ट पर निम्नानुसार लिखा गया है –

वासी बीकानेर के, अगरचन्द कुलचन्द।
नियम व्रत शुद्ध पालते, सेठ धरमसी नन्द।। १।।

वे श्रावक समुदार चित्त, भ्राता भैरवदान।
दोनों ने मिलकर दिया, ज्ञान हेतु धन दान।। २।।

शुभ सवत् उगणीस सौ सत्तर ऊपर जान।
सस्था श्री पारमार्थिक स्थापित की शुभ जान।। ३।।

इसी उद्देश्य को सस्कृत भाषा मे रूपायित कर अकित किया गया है –

अज्ञानं तमसा पतिं, विदलयन् सत्यार्थ मुक्दासयन् ।
भ्रान्तान सत्पथ दर्शनेन, सुखदे मार्गे सदा स्थापयन।।

ज्ञानालोक विकासनेन सतत भूलोकमालोकयन् ।
वीकाणे अगरचन्द भैरवकृत. पीठ. सदा राजनाम् ।।

अर्थात् अज्ञान अन्धकार दूर करने, ज्ञानालोक को विकसित करने और सत्पथ पर पथारूढ करने हेतु वीकानेर के अगरचन्द भैरोदान

ने एक ज्ञानपीठ की स्थापना की जो अनवरत ज्ञान का प्रकाश फैलाती रहेगी।

विगत 89 वर्षो मे सस्था द्वारा समय–समय पर आवश्यकतानुसार प्रवृत्तियो का सचालन किया और शिक्षा, समाज सेवा, जनकल्याण, ज्ञान–प्रसार, सस्कार निर्माण मे कीर्तिमान स्थापित किये। सस्था के कार्य सचालन मे श्रीमान् जेठमलजीसा सेठिया का उल्लेखनीय योगदान रहा। आपने लगभग 5 दशक तक सस्था के मत्री पद पर रहकर निष्ठा व लगन पूर्वक जो बहुआयामी सेवा की वह सस्था के इतिहास मे अविस्मरणीय है। आपका सपूर्ण जीवन साधनामय रहा। प्रतिदिन नियमित सामायिक व स्वाध्याय आपका जीवन पाथेय रहा। वर्षो तक आपने प श्री पन्नालालजी म सा के सान्निध्य मे सैंकडो थोकडो को लिपिबद्ध कर उन्हे प्रकाशित कराया। समग्र जैन समाज, स्वाध्यायी वर्ग व शोधकर्मी सस्था के इस कार्य हेतु ऋणी रहेगे क्योकि थोकडो की पुरालोक शैली को प्रकाशित करने मे सस्था ने ही अग्रणी भूमिका का निर्वहन किया है।

श्रीमान् जेठमलजीसा मत्री ही नही रहे, सस्था के उन्नयन हेतु आपने समय–समय पर लाखो रुपये प्रदान किये व नैतिक/आध्यात्मिक साहित्य प्रकाशन प्रवृत्ति को गतिमान रखा।

वर्तमान मे सस्था के ट्रस्टी व पदाधिकारी निम्नानुसार है –

1 श्री मोहनलालजी सेठिया –अध्यक्ष
2 श्री चेतनप्रकाशजी सेठिया –उपाध्यक्ष
3 श्री केशरीचन्दजी सेठिया –मत्री व सयोजक साहित्य प्रकाशन समिति
4 श्री शान्तिलालजी सेठिया –सहमत्री
5 श्री माणकचन्दजी सेठिया –ट्रस्टी
6 श्री खेमचन्दजी सेठिया –ट्रस्टी

ज्ञातव्य है कि संस्था को आत्मनिर्भर बनाने हेतु सस्थापको द्वारा सस्था के नाम से कलकत्ता मे दो मकान दान मे किये हैं, जिनके किराये की आय से सस्था का खर्चा चलता है। यह उनकी दूरदृष्टि थी, जिससे सस्था निरन्तर कार्यरत रह सकेगी।

सस्था द्वारा सेठिया कोटडी का दान भी विशेष महत्त्वपूर्ण है।

वर्तमान मे कार्यरत विभागो का परिचय निम्नानुसार है –

1 सेठिया जैन होमियोपैथिक औषधालय

बीकानेर मे सर्वप्रथम होमियोपैथिक चिकित्सा को प्रारभ करने का श्रेय श्रीमान् भैरोदानजी सेठिया को ही है। जन कल्याण की इस प्रवृत्ति से अद्यतन लाखो व्यक्ति नि शुल्क लाभान्वित हुए हैं।

2 सेठिया जैन ग्रन्थालय

बीकानेर के प्राचीन ग्रन्थालयो मे सस्था के ग्रन्थालय का विशिष्ट व गौरवपूर्ण स्थान है। इसमे लगभग 18000 ग्रन्थ, 1200 पत्र–पत्रिकाओ की फाइले, 1800 हस्तलिखित ग्रथ आदि सग्रहित हैं, जिसका लाभ हर सम्प्रदाय के सत–सति वर्ग एव जन साधारण लेते हैं।

3 सेठिया जैन सिद्धान्त शाला

इस विभाग द्वारा विरक्त/मुमुक्षु वर्ग व सन्त मुनिराजो तथा सतिवर्ग के अध्यापन की व्यवस्था की जाती है।

4 नैतिक धार्मिक प्रकाशन

सस्था द्वारा प्रकाशन के क्षेत्र मे अभूतपूर्व योगदान दिया गया है। अब तक लगभग 200 ग्रन्थो/सूत्रो, थोकडो, स्तवन सग्रहो आदि का प्रकाशन मील के पत्थरवत् है। कतिपय पुस्तको की 25 आवृत्तियॉ प्रकाशित हो जाना इनकी लोकप्रियता को उजागर करता है।

श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था, बीकानेर अपने को भाग्यशाली मानती है जो हमे समता विभूति परम श्रद्धेय स्वर्गीय आचार्य श्री नानालालजी म सा की मौलिक कृति 'समीक्षण ध्यान' विषय पर उद्‌बोधित 'नानेश वाणी' के प्रकाशन मे सहयोगी बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। इसके लिये हम 'नानेश वाणी' श्रृखला मे प्रेरणा स्रोत आचार्य श्री रामलालजी म सा के विशेष कृतज्ञ हैं।

निवेदक

चेन्नई
दि 15–12–2002

केशरीचन्द सेठिया
मत्री एव सयोजक–प्रकाशन समिति
अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था
बीकानेर

अनुक्रमणिका

1. समीक्षण ध्यान : एक सुपरीक्षित विधान

निर्विवाद सत्य

विश्व के समस्त धर्मो, दर्शनो अथवा सस्कृतियो मे अनेक प्रकार के सघर्ष एव तनाव पूर्ण मतभेद रहे हैं। सभी ने अपनी सोच के अनुसार धर्म की व्याख्या करने का प्रयास किया है। आज तक लगभग सात सौ प्रकार के धर्म और उनकी व्याख्याएँ प्रस्तुत की जा चुकी हैं। किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि प्राय सभी धर्मो ने ध्यान–साधना से अन्तर्यात्रा होना एक स्वर से स्वीकार किया है। ध्यान–साधना की विधियो–पद्धतियो में अवश्य मतभेद रहे हैं, किन्तु ध्यान के महत्व और उपयोगिता के विषय मे सभी धर्म एक सूत्र मे बध जाते हैं– अनेक धर्माचार्य एव धर्म संस्थापक तो केवल ध्यान को ही अन्तर्यात्रा, आत्म–शुद्धि अथवा आत्म–शान्ति का एकमात्र आधार स्वीकार करते है। उनकी दृष्टि में ध्यान के अतिरिक्त अन्तः प्रवेश का और कोई मार्ग ही नहीं है ।

ध्यान विविध रूपों में

इस्लाम ने नमाज के रूप मे, तो ईसाइयत ने प्रेयर (प्रार्थना) के रूप मे ध्यान को ही स्वीकार किया है। वेदान्त ने आत्मोपासना को, तो मीमासा ने याज्ञिक कियाओ को ध्यान का सम्बल माना है । साख्य–योग ने योगिक साधनाओं को, तो पतजलि ने अष्टाग योग को ध्यान का आधार स्वीकार किया है । बौद्ध ने विपश्यना, तो जैन ने सहजयोग–समीक्षण को ध्यान के रूप मे स्वीकृति प्रदान की है।

इस प्रकार से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि सिद्धात भेद एव मान्यता भेद के होने पर भी ध्यान को आत्म–कल्याण अथवा अन्त प्रवेश का प्रमुख अग मानने मे सभी धर्म बिना विवाद एक मत हो जाते हैं।

वास्तव मे ध्यान की साधना ही एक ऐसी साधना हे जिसके विषय मे विवाद के लिए कोई स्थान शेष नही रहता है। हा, ध्यान की विधियो–प्रक्रियाओ अथवा पद्धतियो के सम्वन्ध मे अवश्य मतभेद रहे हैं। उन्हें रोका अथवा मिटाया भी नहीं जा सकता है। चूकि हजारो–लाखो

साधक जब ध्यान साधना की प्रक्रियाओ से गुजरते हैं तो सबके अपने–अपने निजी अनुभव होते है। प्रत्येक साधक अपने अनुभव को ही श्रेष्ठ मानकर उसी पद्धति को आगे बढने की प्रेरणा अपने निकटवर्ती व्यक्तियो को देता है और इस रूप मे वह एक ध्यान प्रणाली का आकार ग्रहण कर लेती है।

समीक्षण ध्यान–सुपरिष्कृत विधि

ध्यान की इन्ही अनेक प्रक्रियाओ मे एक सुपरीक्षित एव सुपरिष्कृत विधि है–समीक्षण ध्यान। समीक्षण ध्यान की साधना पद्धति आगम वर्णित सहज योग की साधना पद्धति का ही मूल रूप है। जैनागमो मे ध्यान साधना का साकेतिक एव गहनतम विवेचन–वर्णन उपलब्ध होता है। वहा ध्यान, ध्याता और ध्येय के सम्बन्ध मे ही नही, इनकी सुव्यवस्थित क्रिया विधियो के सन्दर्भ मे भी सुविस्तृत वर्णन हुआ है। मूल रूप से आगमो मे ध्यान के चार भेद बताये गए है। यथा–"चउविहे झाणे पण्णत्ते तजहा"–१ अट्टज्झाणे २ रूद्द ज्झाणे ३ धम्म ज्झाणे ४ सुक्क ज्झाणे। अर्थात् १ आर्त्त ध्यान २ रौद्र ध्यान ३ धर्म ध्यान और ४ शुल्क ध्यान ।

इन चार प्रकार के ध्यानो के अतिरिक्त एक दूसरे प्रकार से भी ध्यान को चार भेदो मे व्याख्यायित किया गया है–१ पदस्थ, २ पिण्डस्थ, ३ रूपस्थ और ४ रूपातीत। प्रथम प्रकार के चार ध्यानो का सम्बन्ध साधना स्वरूप से है। ध्यान साधना की विविध रूपा विधियो मे, मुख्य तौर पर समीक्षण साधना विधि मे प्रस्तुत चारो ध्यानो का बहुत अधिक महत्त्व है, किन्तु प्रस्तुत चारो ध्यानो के विस्तार के पूर्व ध्यान की परिभाषा एव व्याख्या को समझ लेना अति आवश्यक है।

ध्यान परिभाषा–

वाचक मुख्य श्रीमदुमास्वाति ने तत्त्वार्थ सूत्र मे ध्यान की परिभाषा बताते हुए लिखा है –

"उत्तम सहननस्यैकाग्र चिन्तानिरोधो ध्यानम्।" तत्त्वार्थ सूत्र० ।

जैन तत्त्व दर्शन मे शारीरिक सगठन की सशक्तता को सहनन की सज्ञा प्रदान की और उसे छ भागो मे बाटा गया है। १ वज्रऋषभनाराच सहनन २ ऋषभनाराच सहनन ३ नाराच सहनन ४ अर्धनाराच सहनन ५ कीलिका सहनन और ६ सेवार्त सहनन

एक कहावत् है कि 'बलवान् तन मे बलवान् मन निवास करता है।' तदनुसार गहन ध्यान साधना के लिये सुदृढ, सुगठित, मजबूत शरीर होना आवश्यक है। इस दृष्टिकोण से उमास्वाति ने ध्यान की परिभाषा मे शारीरिक सगठन को प्रथम स्थान देते हुए कहा है– उत्तम सहननस्य अर्थात् उत्तम सहनन वाला व्यक्ति ही ध्यान का अधिकारी माना जाता है।

उपर्युक्त छ सहननो मे प्रथम तीन सहनन ही प्रशस्त, उत्तम अथवा सुगठित माने गये हैं। अत इन तीन सहननो वाला व्यक्ति ही ध्यान का अधिकारी माना गया है। सामान्य शारीरिक सगठन वाला व्यक्ति अधिक समय तक स्थिरता पूर्वक आसनो मे बैठकर अपने विचार प्रवाह को स्थिर चित्त से एक दिशा मे नही कर पाता है। जबकि ध्यान का मूल अभिप्राय हे– विविध दिशागामी विचार प्रवाह को एक सुव्यवस्थित दिशा प्रदान करना । इस रूप मे ध्यान की वस्तुनिष्ठ परिभाषा होती है– चित्त वृत्तियो का समीकरण। मन के विविध दिशाओ मे विचलन वाले भटकाव का अवरून्धन अथवा दिक्सूचन।

हमारा मन खुली हवा मे रखे हुए दीपक की लौ के समान विविध दिशाओ मे डोलता रहता है और इसी कारण वह किसी एक ही दिशा मे व्यवस्थित प्रकाश नही कर पाता । दीपक की अस्थिर लौ के समान अस्थिर मन अपनी समस्त ऊर्जा को अलग–अलग दिशाओ मे कर देता हे और इससे अपने सामर्थ्य की सीमा को भूल कर एक छोटे से दायरे मे अनुबद्ध कर देता है ।

जिस मन मे भीतर छिपी हुई अनत आनद निधि को प्राप्त करने की क्षमता है, जिस मन मे असभव को सभव कर दिखाने का साहस है, जिस मन मे ब्रह्माण्ड को हिला देने का प्रचण्ड पोरुष है, वह मन अपनी शक्ति के बट जाने के कारण सामर्थ्यहीन दीन हीन बना

हुआ है । ध्यान साधना का अर्थ है – मन की इसी बधन रहित ऊर्जा को एक व्यवस्थित दिशा मे नियुक्त, प्रयुक्त करना ।

समीक्षण की आगमिक विधियाँ

मन की इस शक्ति के प्रयोग–उपयोग की दिशा मे अगणित प्रयास हुए है और अनेक विधियो की खोज हुई है। समीक्षण ध्यान की प्रक्रिया उन्हीं विधियो मे एक सुपरीक्षित, सुपरिष्कृत विधि है। ध्यान साधना की इस प्रक्रिया मे हम बाहर की दुनिया से भीतर की दुनिया मे प्रवेश करते हैं। बधन से मुक्ति अथवा राग से विराग की ओर बढने की इस प्रक्रिया को समीक्षण ध्यान की सज्ञा प्रदान की गयी है। मूल मे यह प्रक्रिया मनोवृत्तियो के नियत्रण की अथवा चित्त वृत्तियो के सशोधन की एक प्रक्रिया है । चित्त वृत्तियो के सशोधन के लिये जैन तत्वद्रष्टाओ ने जो अनेक दृष्टिया अथवा विधियॉ प्रस्तुत की है, उनमे समीक्षण दृष्टि एव विधि पूर्ण सशोधित विधि है ।

आगमो मे आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ध्यान का उल्लेख मिलता है। ध्यान के इन भेदो को स्पष्ट करते हुये ज्ञानार्णव योग दृष्टि समुच्चय आदि मे जो वर्णन मिलता है, उससे भी ध्यान सम्बन्धी ज्ञान की अभिवृद्धि की जा सकती है। किन्तु समभाव मे परिणत हुए बिना यथावस्थित स्वरूप का बोध नहीं होता है। समभाव की अवस्था का सम्यक् ईक्षण ही समीक्षण है । जिसके माध्यम से आर्त को आर्त रूप मे और रौद्र को रौद्र के रूप मे समीक्षण करता हुआ साधक ज्ञेय एव ज्ञेय सम्बन्धी प्रज्ञा का विकास करता हुआ धर्म एव शुक्ल ध्यान की ज्ञेय–उपादेयता का भली–भाति समीक्षण कर सकता है ।

समीक्षण ध्यान हस की चोच की तरह इच्छित वस्तु ग्रहण करने की तरह वस्तु के स्वरूप का यथार्थ बोध कराता हुआ भीतर के पथ के राही को सतत् उच्च साधना मे गति प्रदान करता है ।

ज्ञानार्णव, योग दृष्टि समुच्चय आदि आर्य ग्रथो मे जिन पदस्थ आदि ध्यान विधियो का उल्लेख मिलता है वे ही आत्म–समीक्षण की भी विधियॉ हैं । आगमो मे आर्त, रोद्र, धर्म और शुक्ल ध्यान का जो

गहनतम विवेचन उपलब्ध होता है वह सब समीक्षण का ही विविध रूपी विश्लेषण है। धर्म–ध्यान और शुक्ल–ध्यान की जो भावनाएँ–अनुप्रेक्षाएँ बताई गई हैं, वे समीक्षण की विविध–आयामी पद्धतियाँ ही है ।

इस प्रकार मन की किवा मनोयोग स्थिति को स्वस्थ दिशा प्रदान करने वाली जितनी भी विधियाँ, प्रणालियाँ अथवा पद्धतियाँ हैं, वे सब समीक्षण ध्यान की विधियाँ मानी जा सकती है।

आगमिक परिप्रेक्ष्य मे चितन किया जाय तो ध्यान का सम्बन्ध प्रारभ मे मानसिक अशुभ वृत्तियो का शोधन एव शुभ वृत्तियो को आत्म–स्वरूप की ओर देने के रूप मे ही अधिक है। इस प्रकार की प्रक्रिया से चलता हुआ साधक जब तेरहवे व चौदहवे गुणस्थान मे पहुँचता है तो उस स्थिति मे वीतरागी आत्माओ को ध्यान साधना की विशेष अपेक्षा नहीं रहती है, क्योकि उन स्थानवर्ती आत्माओ के मन की अशुभ वृत्तियाँ परिमार्जित हो जाती है, जिससे मन सम्बन्धी चचलता का अत्यत अभाव हो जाता है एव शुभ वृत्तियाँ आत्म–स्वरूप की ओर मोड खाती हुई अप्रमत्त भाव मे समाविष्ट हो जाती है। अत प्रारम्भिकता से लेकर के कुछ ऊर्ध्वगमन तक स्थिर रखने के प्रयास की आवश्यकता नही रह जाती हैं। इन दोनो गुण–स्थानो मे सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती एव सम्भूछिन्न क्रिया निवृत्ति रूप दो ध्यान पाते हैं। वे भी मन, वच, काय के योगो का व्यवस्थित करण एव चरम परिणति की अवस्था मे आत्म प्रदेशो का स्थिरीकरण होने से सम्बन्धित हैं। क्योकि वहाँ ध्यान साधना की अतिम मजिल प्राप्त हो जाती है।

मूल रूप मे मन की प्रारभिक चचलता को समाहित कर उसे स्वय की आत्मा को परमात्मा के स्वरूप की दिशा मे जोड देना अर्थात् परमात्म स्वरूप स्वय मे परिणत कर लेना ध्यान साधना का उद्देश्य हे और वह मन की वृत्तियो को समभाव पर लाने से वनता हे। अस्तु, प्रस्तुत प्रसग मे मन के विश्लेषण और उसे साधने के सदर्भ मे ही विचार करने का प्रयास कर रहे है।

मन-एक सृजनात्मक शक्ति

समीक्षण ध्यान का उद्देश्य है– अन्तर्यात्रा । मन की वृत्तियो को बाहर के भटकाव से भीतर की ओर मोड कर उसकी गतिविधि को भी समझ लेना आवश्यक है।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि अपनी सामान्य स्थिति मे साधारण व्यक्ति के लिये मन एक प्रमुख समस्या बन कर खडा है। मन चचल है, विकारो की ओर शीघ्रता से दौडता है, बडे–बडे साधको को भी ही परेशान कर डालता है। यह मन ही कषायो और राग–द्वेष की ओर दौडाता है तथा यही हजारो उलझने खडी कर देता है । मन को साधने के लिये ही हजारो योगी– साधक, जप, तप, साधना और उपासना की अगणित विधियो का अविष्कार करके उनकी और प्रवर्तित होते हैं। मन एक ऐसा घोडा है कि यदि लगाम हाथ मे न हो तो सवार को किसी भी बीहड वन मे भटका सकता है या भयकर गड्ढे मे डाल देता है ।

किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि यदि मन की दिशा बदल जाए, उसे सम्यक् मार्ग मिल जाए तो वह प्रचण्डतम ऊर्जा का सवाहक बन कर ईश्वर मिलन का माध्यम भी बन सकता है। जैसे सुशिक्षित ओर हस्त लगाम वाला घोडा सवार को इच्छित समय मे इच्छित स्थान पर पहुॅचा देता है उसी प्रकार समाहित–सुसाधित मन निश्चित गन्तव्य तक पहुॅचा देता है । एक बार मन की शक्ति को पहचानने भर की आवश्यकता है। शक्ति की थाह मिल गयी और उसे दिशा मिल गई तो मन के सारे भटकाव अवरूद्ध हो जायेगे। मन एक बार भी अन्तर्मुखी बन तो जाय, फिर वह बाहर झॉकेगा ही नही। मन को एक प्रशस्ततम शक्ति के रूप मे देखा जाय, उसे शत्रु नहीं, परम प्रिय मित्र माना जाय, तो वह मित्रवत् ही कार्य करेगा । मन के द्वारा ही तो योगीजन अनेक प्रकार की सिद्धिया प्राप्त करते हैं। यदि मन को ठीक से समझा जाय और उसके उपयोग की दिशा का सम्यग्बोध हो तो ज्ञात होगा कि मन एक महान् कार्यकर्ता है। वह एक महान् सृजनात्मक शक्ति है।

चंचलता भी शुभ है –

मानले कि मन चचल है। फिर भी वह चचलता ही तो आत्म साधना के लिये भी प्रेरित करती है। वही उच्च साधको और साधना केन्द्रो तक पहुँचने की प्रेरणा प्रदान करती है। मन चचल है, इसलिये तो वह कही भी सन्तुष्ट नही होता या स्थिर नही होता– विश्रान्ति नही लेता। उसे रूप मिला तो वह उससे श्रेष्ठ रूप की खोज करता है। रस मिला तो मधुरतम रस की खोज मे और अधिक दौडता है। गध, स्पर्श और शब्द मिले तो वहा भी उसे अपनी उपलब्धि मे कहा सन्तोष है ? वह उससे श्रेष्ठतम की खोज व चर्चा चालू ही रखता है। यह मन की चचलता ही तो ऊँचे से ऊँचे स्थान की ओर चैतन्य को दौडाती है। उसे अधिक से अधिक आगे बढाने को प्रेरित करती है।

यदि मन चचल नही होता तो क्रोधी व्यक्ति क्रोध भाव पर ही स्थिर हो जाता। मानी मान पर और लोभी अपने लोभ पर ही चिपक कर बैठ जाता। विषयी तो वासना मे ही जडीभूत हो जाता, किन्तु ऐसा नहीं होता है। मन अपनी गति को रोकता नही, उसे कही विश्रान्ति नहीं मिलती । इसका अर्थ यह नही है कि मन–विश्रान्ति नही चाहता है। वह दौडता ही रहना चाहता है। मन– विश्रान्ति चाहता है। किन्तु वह अपूर्ण मे नही रूकना चाहता है। वह सदा परिपूर्णता की खोज मे दौडता– भटकता है। वह थोडी उपलब्धि से समझौता नही करता। वह पूर्णता मे समाहित–अवगाहित होना चाहता है । वह अधूरी नही, पूर्ण समता चाहता है । वह एकात्मा से नही, विश्वात्मा, समस्त चराचर या परमात्मा के साथ एकाकार (तुल्य) होना चाहता है ।

मन इसलिये चचल है कि वह इन्द्रियो के आकर्षणो को, अशान्ति को छोडकर परम शान्ति की ओर आगे से आगे बढना चाहता है। जैसे मधुकर मकरन्द के लिए एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर मँडराता रहता है, उसी प्रकार मन भी अधूरी तृप्ति के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रिय पर, एक विषय से दूसरे विषय पर दौडता रहता है । मन की चचलता के सन्दर्भ मे एक रहस्यमय विमर्श यह है कि वह पूर्ण विश्रान्ति चाहता है । अल्पकालिक अथवा

अधूरी विश्रान्ति मे वह स्थिर नही हो जाना चाहता और इसलिये जब तक आत्म समीक्षण या परमात्म ध्यान मे पूर्ण समरस नही बन जाता तब तक चचल–चपल बना रहता है । यदि मन आत्म–समीक्षण की गहराई मे डूब जाय, अन्तर्ज्योति के साक्षात्कार मे लीन हो जाय या परमात्म भाव की गहनता मे खो जाय तो वह चचलता को त्याग कर अविचल–निश्चल हो जायेगा। यह ध्यातव्य है कि मन आत्म–विस्मृति मे कभी स्थिर नही रह पायेगा। उसकी चचलता–अस्थिरता बढेगी ही ओर वह इस चैतन्य देव को कभी भी सुख की सास नही लेने देगा । किन्तु ज्योही यह पूर्ण आत्म विश्रान्ति मे डूब जाता है, अपने आत्म मे या परमात्म भाव मे तन्मय बनता है कि इसे अपना स्थायी आश्रम मिल जाता है और वहा वह टिक कर बैठ जाता है। एक सामान्य सभ्य व्यक्ति को भी अपने बैठने के योग्य आसन मिलता है तभी वह वहा बैठना उचित समझता है अन्यथा वह खडा रहना या इधर–उधर टलहना ही अधिक पसन्द करता है। यहा एक छोटी–सी कथा स्मृति पटल पर उभर रही है–

मन को स्थान दें-

एक अलमस्त साधक एक कुटिया मे रहता था। कुटिया जगल के मनोरम-शान्त–प्रशान्त–भव्य रमणीय स्थान मे थी, किन्तु थी घासे –फूस की। महात्मा अपनी उस छोटी–सी कुटिया मे ही योग साधते और आनन्द मनाते।

एक दिन नगर का सम्राट् महात्मा के दर्शन हेतु कुटिया पर पहुँचा। महात्मा कही बाहर गये हुए थे । महात्मा के शिष्यो ने सम्राट् को कुटिया मे बैठने का आग्रह किया, किन्तु सम्राट् बाहर वृक्ष के नीचे टहलता रहा, कुटिया मे नही बैठा । कुछ समय पश्चात् महात्मा आ गये तो शिष्य ने साश्चर्य निवेदन किया –"गुरूदेव । इस सम्राट को यहा कुटिया मे बैठने का बहुत आग्रह किया, किन्तु वह बैठता ही नहीं, कभी से घूम रहा है ।"

महात्मा ने कहा .. . "भाई । हम लोग ठहरे फक्कड–गरीब, और राजा को बैठने के लिये अच्छा आसन चाहिये। उसके योग्य

जगह नही है तो वह कैसे बैठेगा ?"

बस यही स्थिति मन के सम्बन्ध मे समझनी चाहिये । उसके अनुकूल स्थिति बन जाय, तो वह टिकेगा–स्थिर बनेगा, उसकी चपलता अपने आप रूक जाएगी । यह मन अपने अनुकूल इच्छित वस्तु या सबसे उत्तम तत्त्व की उपलब्धि हेतु भटकता है । सबसे उत्तम की उपलब्धि के साथ ही यह स्थिर हो जाता है ।

समीक्षण–राग द्वेष से विनिर्मुक्त रह देखना

इसमे राग द्वेष पूर्वक दमन का प्रतिपादन नही है। राग द्वेष के साथ किसी का दमन करना समीक्षण दृष्टि को स्वीकार नही है। रागादिक वृत्ति से रहित अवस्था मे साधक को मन का दमन करना होता है ।

फ्राइड ने जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मे दमन सबधी विजय का विरोध किया है। वह रागादिक वृत्ति एव इन्द्रिय विषयो से अनुरजित है । उस विषय मे मनोविज्ञान अधूरा रह जाता है। यही कारण है कि फ्राइड के शिष्य यूग आदि ने फ्राइड के सिद्धातो का प्राय समर्थन नहीं किया। उनकी दृष्टि कुछ विशद एव गहराई से चितन की थी । वस्तुत अनुभव सत्य भी इस बात की पुष्टि करता है कि अमुक अवस्था मे अमुक सीमा तक दमन की भी आवश्यकता रहती है। विद्यार्थी वर्ग को तटस्थ भाव वाला वास्तविक अध्यापक उसकी मनोनुकूल वृत्ति से शिक्षण नही देता, किन्तु विद्यार्थी की हितदृष्टि से शिक्षण देता है। विद्यार्थी अवस्था मे रहने वाले छात्र वर्ग पैनी दृष्टि से ऊँचाई तक चितन नही कर पाते, अतएव वे अपना वास्तविक हित नहीं सोच सकते। उन विद्यार्थियो का वास्तविक हित तटस्थ अध्यापक ही सोच सकता है। तटस्थ दृष्टि से हित सोचने वाला शिक्षक विद्यार्थी की मनोवृत्ति को देखता है। उसे लगता है कि इस विद्यार्थी की मनोवृत्ति कुसगति से अथवा अन्य किसी भी हेतु से सही नहीं है। उसको उनकी वृत्ति का दुष्परिणाम दिखाने पर भी उस वृत्ति के अधीनस्थ रहने से विद्यार्थी जान नही पाता । अतएव

अध्यापक उसकी वृत्ति को दबाता है। उससे कहता है कि अमुक कार्य तुम्हे नही करना है, अमुक कार्य तुम्हे करना होगा। विद्यार्थी की मनोवृत्ति नही होने पर भी शिक्षक के दबाव पूर्वक कहने से स्वय की मनोवृत्ति को दबाकर शिक्षक द्वारा बतलायी गयी प्रवृति को कुछ समय अनमनेपन से भी करता है। कुछ समय के पश्चात् उसको उस प्रवृत्ति मे स्वत हित ज्ञात होता है। तब फिर पूर्व की मनोवृत्ति से उसकी रूचि हट जाती है । उसे वह हेय समझकर अध्यापक के कथनानुसार चलने लगता है। फिर कोई अन्य व्यक्ति उसकी वृत्ति का दमन भी करना चाहे, तो वह विद्यार्थी कर नहीं पाता तथा–शिशु अवस्था मे खेलना, कूदना आदि क्रीडा–जनित कार्य अच्छे लगते है। उस समय हितैषी सरक्षक एव शिक्षक उसको अक्षरी ज्ञान मे बलपूर्वक लगाते हैं। वह आडे–टेडे अक्षर भी लिखने लगता है। पर जब उसको ज्ञात हो जाता है कि यह सीखे बिना मेरा छुटकारा नहीं है। शनै शनै उसमे अपना मनोयोग लगा परीक्षा फल के साथ सयोग कर अक्षरो का अच्छी तरह से अध्ययन करने लग जाता है, तब उसकी रूचि उसमे बढ जाती है। जो पूर्व की अनिष्ट वृत्तिया थी, उनका रूपान्तारण हो जाता है। उससे उस विद्यार्थी को स्वय की हित–दृष्टि का ज्ञान हो जाने से उन सरक्षक एव शिक्षक का उपकार मानने लगता है और उस हित दृष्टि को स्वय के जीवन मे उतार कर स्वय को सुखी बनाने का प्रयत्न करता है। यह सरक्षक एव शिक्षक की हित–भावनापूर्वक विवेक दृष्टि से दमन का ही फल सामने आता है।

मानसिक वृत्ति सभी एक समान नहीं होती है। कई वृत्तियॉ वास्तविक शिक्षा के अभाव, कुसगति एव दुर्वासनाओ के अभ्यास से वन जाया करती हैं। उन वृत्तियो का स्वच्छदता पूर्वक उपयोग करने दिया जाय तो वे पुरूष स्वय का अहित अवश्य ही करेगे। किन्तु उनका जिस किसी के साथ सम्वध रहा हुआ है या होता है, उन सभी का अहित होता है। साथ ही परम्परा से अन्य अनेक आत्माओ का अहित होता है । शास्त्रकारो ने स्पष्ट कहा है कि "अप्पा चेव दमेयव्वो" स्वय की आत्मा को दमन करना चाहिए। जिससे कि अन्य के द्वारा दमित होने का प्रसग उपस्थित नहीं हो।

समीक्षण साधना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है कि मन को एक अधूरे नश्वर तत्व से दूसरे विनश्वर तत्त्व अविवेक पूर्वक बलात् खीच कर रोकने की हठ योग की साधना कभी सफल नही हो सकती है। मन पूर्णता की तलाश करता है, तो उसे पूर्णता पर सतोष होगा। समीक्षण ध्यान साधना भी अज्ञानता के साथ अविवेकपूर्वक जबरन अपूर्णता एव विनाशशीलता पर रोकने का पक्षपाती नही है ।

प्रभु महावीर ने अज्ञान एव अविवेक पूर्वक मन के दमन पर नही, सयमन पर जोर दिया है । सयमन शब्द "यमु उपरमे" धातु से बनता है । सयमन का अर्थ है कि राग द्वेष की वृत्ति से उपरत होना, उनसे विलग हो करके चलना।

समीक्षण ध्यान अविवेक व अज्ञानता पूर्वक मन पर जबरन दबाव डालकर दबाने का हिमायती नही है। आज का मनोविज्ञान भी सिर्फ फ्राइड के सिद्धात के अनुसार मन को बलात् रोकने का विरोधी है किन्तु थुग आदि मनोवैज्ञानिको के सिद्धात फ्राइड के अनुरूप कथन करने वाले नही है। वे आपेक्षिक दृष्टि से मन को अमुक सीमा तक विवेक पूर्वक दमन के पक्षपाती हैं। अत मन को सम्यक् ज्ञान के आधार पर साधने की प्रक्रिया सिखाता है– समीक्षण ध्यान। समीक्षण ध्यान का उद्देश्य है कि मन को छोटी–मोटी उपलब्धियो मे नही, परम अध्यात्म, परम आनन्द की सरिता मे गोता लगाने के लिए काषायिक वृत्ति से रहित यथावस्थित वस्तु का अवलोकन करते हुए अविनश्वर परम साध्य पर छोड दे। फिर वह अन्य कही भागने की चेष्टा नही करेगा। मन को उस पावन अन्तरात्मा की यात्रा का मार्ग दे दो, जहा उसे ऐसा रस आयेगा कि वह दौड–दौड कर बारबार वही भागेगा। एक बार उसे अन्तरात्मा की झलक मिली कि उसे इन्द्रियो के बाह्य विषय आकर्षित नही कर सकेगे। एक बार उसे परमानन्द मय परमात्मा की झलक मिल जाने दीजिये फिर मन कहाँ भागेगा ?

इस रूप मे समीक्षण ध्यान के द्वारा हम न केवल मन की शक्ति को ही पहचानते है अपितु अपनी आतरिक चेतना मे जो–जो शक्तियाँ छिपी पडी है, उन्हे भी जान लेते हैं। इस ध्यान के द्वारा ही हम अतरग

निधि का साक्षात्कार करके दारिद्र्य को मिटाकर परम गभीर, परम श्री सम्पन्न बन जाते हैं। समीक्षण ध्यान की यह साधना गहरे मनोविज्ञान से भी करके तत्त्व को सस्पर्शित करने वाली है। इसके द्वारा मन की परिधि का तो सागोपाग विज्ञान होता ही है, किन्तु मन की परिधि से अलौकिक तत्त्व का भी साक्षात्कार हो सकता है ।

इसी आधार पर ध्यान को कल्प वृक्ष, कामधेनु, चितामणि एव काम कुम्भ जैसे उन्नत तत्त्व से सतुलित किया जाता है । जैसे कल्प वृक्ष, कामधेनु, चितामणि एव काम कुम्भ मनोवाछित फल प्रदान करने वाले है । उसी प्रकार समीक्षण ध्यान साधना की प्रक्रिया सभी प्रकार का आनन्द प्रदान करने वाली प्रक्रिया है । मनोवृत्तियो का पूर्ण समीक्षण हुआ नही कि चेतना पूर्ण आनन्दलीन हुई। मन की इस परिपूर्ण आनन्दमय विश्राति मे ले जाने की प्रक्रिया का नाम है – समीक्षण ध्यान साधना ।

समीक्षण की पदस्थादि विधियाँ

अब जरा समीक्षण की प्रक्रिया मे प्रयुक्त पदस्थादि चारो ध्यानो की सक्षिप्त विधि को समझने का प्रयास करेगे ।

पदस्थ ध्यान

सस्कृत मे पद उस शब्द रचना को कहते हैं जो प्रत्यय से युक्त हो और स्पष्ट अर्थ देता हो। इसी दृष्टि से पदस्थ ध्यान मे नमस्कार मन्त्र, लोगस्स, नमोत्थुण, आगम पाठो आदि का एकाग्र चित्त से स्वस्थ मन स्थिति के भाव एव अर्थानुसधान के साथ समीक्षण करना। आगमिक सन्दर्भो का चिन्तन–मनन पूर्ण समीक्षण करना पदस्थ समीक्षण है।

पिण्डस्थ ध्यान

पिण्ड का अर्थ यहा तत्त्व विशेष से है। आत्म–तत्त्व एव शरीर तत्त्व की भिन्नता का अवधानता पूर्वक समीक्षण करना। देहाध्यास से ऊपर उठकर चेतन तत्त्व की अविनाशिता का समीक्षण पिण्डस्थ समीक्षण हे ।

रूपस्थ ध्यान

रूपस्थ का अर्थ यहा पदार्थों के स्वरूप विशेष से लिया गया है । वीतराग अरिहन्त प्रभु के स्वरूप का अथवा ससार के द्रव्यो के रूपो का वह चिन्तन जिसके द्वारा चैतन्य अरिहन्त के रूप मे स्थित हो सके–रूपस्थ ध्यान कहलाता है ।

रूपातीत ध्यान

सिद्ध प्रभु की इन्द्रियो से परे की अवस्था का, उनके मौलिक गुणो का मनन रूपातीत समीक्षण ध्यान है । यहा रूपातीत का अर्थ इन्द्रिय–ग्राह्म रूप से भिन्न अरूपी सत्ता से है और वह हमारा चरम अभिप्रेत है ।

ये चारो प्रकार के ध्यान समीक्षण की विभिन्न प्रक्रियाओ से जुडे हुए है । एकान्त, शान्त वातावरण मे बैठ कर उपर्युक्त प्रकार के भिन्न–भिन्न चिन्तन–मनन एव निदिध्यासन की विधियॉ समीक्षण के मनोविज्ञान से जुडी हुई है।

चूकि इन प्रक्रियाओ का सम्बन्ध भी मुख्यतया मन की वृत्तियो को भीतर की ओर बनाने से विशेष है। अत समीक्षण के मनोविज्ञान से इनका गहरा सम्बन्ध ह । समीक्षण की इस प्रक्रिया के द्वारा साधक अपने मन को पद से पिण्ड और पिण्ड से रूप और रूप से रूपातीत चिन्तन की ओर गतिशील करता है तथा अपनी चरम परिणिति मे वह आत्म–साक्षात्कार एव परमात्म साक्षात्कार का अनुपमेय आनन्द प्राप्त कर सकता है। यही तो समीक्षण ध्यान की चरम उपलब्धि है । जिसके प्राप्त होने के पश्चात् कुछ भी प्राप्त करना शेष नही रहता। वहा मन अपनी पूर्णता मे विश्राति ले लेता है। आत्मा फिर स्वरूप मे प्रतिष्ठित हो जाती है।

समीक्षण के मनोविज्ञान को समझे, उसकी गहराई मे उतरने का प्रयास करे, फिर सब कुछ साधक के अपने समक्ष ही दिखाई देगा । मन का भटकाव सहज रूक जायेगा और वह परमात्म भाव के सबसे उच्च स्वरूप मे लीन हो जायेगा ।

□□

8. सहज योग बनाम समीक्षण ध्यान

अध्यात्म साधना का मुख्य केन्द्र "मन" है। यह नीति वाक्य अत्यन्त तथ्यपरक है कि "मनो विजेता जगतो विजेता।" किन्तु मन की साधना सुगम नही है। अनेकानेक साधक मनोनिग्रह के विविध साधना-मार्गों का सहारा लेते है, परन्तु अधिकाश साधक मन की साधना के विषय मे हताश और विनाश हो मार्ग से भटक जाते है- साधनारत साधक प्रभु के साक्षात्कार के लिए साधना मे बैठते हैं, किन्तु जब उद्दाम मन उस साधना से विलग हो जाता है, तब साधना मे रस की प्राप्ति नही हो पाती है। वे साधना के लक्ष्य से विमुख बने साधक मन को स्थिर करने का प्रयत्न करते है। उस स्थिरता के प्रयास मे उन्हे जब आशिक सफलता भी नही मिलती है, तब अधिकतर साधक या तो मनोनिग्रह के अप्राकृतिक उपायो की ओर बढ जाते हैं अथवा ऊबकर मनोनिग्रह के प्रयास को ही छोड बैठते हैं। आखिर मे जाकर वे यह कहना शुरू कर देते हैं कि मन कभी वश मे नहीं हो सकता है।

मन एक टेढ़ी खीर

वास्तव मे मन को वश मे कर पाना एक कठिन कार्य है। आप किसी एक विषय पर कुछ गहराई से विचार करना चाहते है अथवा सिर्फ प्रभु के नाम की माला ही एकाग्र चित्त से फेर लेना चाहते है और मन को रोक कर उसे आप उसमे लगाना चाहते हैं, लेकिन होता क्या है कि आपने मन को एक विषय या प्रभु के नाम मे जैसे ही लगाया कि दूसरे ही क्षण वह दौड जाता है आपके कारखाने मे, कि वहा के उत्पादन को कैसे हल्के प्रकार का बनाया जाय, जिससे खर्चा कम बैठे और मुनाफा ज्यादा आवे। वहा से मन को किसी तरह खीच खॉच कर लावे और फिर से प्रभु के नाम मे जुटावे, किन्तु वह फिर अगले ही क्षण आपके पुत्र के विवाह की चिता मे भाग जायेगा, कि अभी तक पचास हजार का माल देने वाले लडकियो के पिता तो आ चुके हैं-

अब और माल के लिये ठहरा जाय या सम्बन्ध तय कर लिया जाय। आप फिर वहा से उसे खींच कर माला मे पिरोना चाहते है और वह बार–बार इधर–उधर भागता रहता है। अक्सर प्रारम्भ मे नतीजा यह निकलता है कि चाहे आप माला फेरने बैठे है या सामायिक लेकर, उस क्रिया का समय पूरा हो जाता है, परन्तु लगता है कि अन्त करण से तो उस क्रिया की साधना हुई ही नही। शरीर जरूर क्रिया मे बैठा दिख रहा था, किन्तु मन तो न जाने कहा–कहा छलागे लगाता घूम रहा था।

मन की गति इतनी चचल होती है कि वह एक क्षण मे अगणित स्थानो की सैर कर आता है और जितनी चचलता अधिक होती है उतने ही विविध विचार तो कर लिये जायेगे, किन्तु उनमे से किसी एक विचार का भी सफल कार्यान्वयन हो–इसकी आशा कम रहती है। अत इसमे कोई सन्देह नही कि जब तक मन की इस चचलता को समाप्त न कर दे तब तक साधना की सफलता का वातावरण नही बन सकेगा।

जिसने–आत्म–साधना की ओर आगे कदम बढाया है, उसके सामने दो ही मार्ग रहते है या तो वह अरिहन्त परमात्मा की शरण मे जाकर उनकी प्रार्थना एव आत्म–समीक्षण, निज–नियन्त्रण के आधार पर मन को एकाग्र बनाने का अभ्यास करे तथा उस एकाग्र चित्त से प्रभु की भक्ति और सेवा मे निमग्न हो जावे अथवा मन की गोता–खोरी मे उलझ कर अपनी साधना की स्थिति को खो बैठे। प्राय कई साधको के ऐसे भाव बन जाते है कि जब तक मन की चचलता समाप्त न हो और उसे वश मे न कर सके तब तक साधना के क्षेत्र मे आगे कुछ भी नहीं किया जाना चाहिये। किन्तु निराशा के ऐसे अन्धकार मे डूबने की जरूरत नही है, क्योकि अरिहन्त परमात्मा के आदर्श स्वरूप का गहराई से समीक्षण करते रहे तो शीघ्र ही मन वश मे अवश्य हो जायेगा। उनका आदर्श स्वरूप इतना रोचक एव अनुप्रेरक हे कि एक बार ज्ञान दृष्टि से उसे समझने और परखने का प्रयास कर लिया

जाय, तो मन मे उसे अपने लिये भी पा लेने की अडिग ललक पैदा हो जाती है । यह ललक ही मन को इतनी मजबूती से उस दिशा मे मोड देगी कि वह पथ–भ्रष्ट होने की कोशिश तक नही करेगा । समीक्षण की प्रकिया ही इतना अनूठा प्रभाव उत्पन्न करने वाली है कि फिर मन कही जा नही सकता ।

मन साधना असंभव नहीं

यह मानकर चलिये कि ससार मे एक भी ऐसा कार्य नहीं, जिसे सकल्पवान और साहसी पुरूष पूरा न कर सके। अरे, साहसी पुरूष ही तो असभव को सभव करके दिखाते है। अरिहत परमात्मा के दिव्य स्वरूप मे मन को एकाग्र करने के अभ्यास से चचलता को धीरे–धीरे समाप्त करते जाना कठिन नही होता। दुनिया मे ऐसा कोई तत्व नहीं, जिसकी स्थिति का पता नहीं लगाया जा सके। यह पता लगाने का काम भौतिकता की दृष्टि से ही नही होता, उसमे आध्यात्मिक जीवन की परिपुष्टि का ज्ञान भी आवश्यक होता है। बल्कि यो कहा जाये कि आध्यात्मिक क्षेत्र किसी भी तत्व का पता लगाने मे कभी असफल नही होता, जबकि भौतिक विज्ञान की कही भी सपूर्ण रूप से पैठ नही होती है। जो उसने पता लगा लिया है, वह कही भी पूर्ण नही है। मन के सम्बध मे ही देखिये कि विज्ञान न तो इसके स्वरूप का अब तक ठीक पता लगा पाया है, न वह मन की चचल गहराईयो मे ही आकर उसकी गति के बारे मे कोई अनुमान लगा सका है, किंतु आध्यात्मिक क्षेत्र मे मन ऐसा कोई दुरूह तत्व नहीं, जिसका वह पता नही लगा सके, बल्कि मन की गति के प्रत्येक रूप का पूर्ण विवेचन आध्यात्मिक क्षेत्र मे खोजा हुआ मिलेगा। इसलिये निराशा का कोई कारण नही कि मन को वश मे किया नही जा सकता। मन की वृत्तियो का समीक्षण करके उसे पूर्ण नियत्रित किया जा सकता है।

मन को स्थिर करने की सटीक विधि का उल्लेख

आध्यात्मिकता मे है। वह है समीक्षण ध्यान। मन के परिणामो की चचलता कई प्रकार से मनुष्य के सामने आती है। उस चचलता को समाप्त करने के लिए कई लोग– अलग–अलग साधना की विधिया अपनाते हैं। कुछ लोगो का कहना है कि इसके लिये त्राटक किया जावे। त्राटक का नाम शायद आपने नही सुना होगा। किसी भी एकात स्थान मे दीवार पर अमुक चिह्न अकित करके उसी की ओर एकटक दृष्टि साधकर मन मे एकाग्रता लाने का जो प्रयास किया जाता है, उसे त्राटक विधि के नाम से पुकारा जाता है। दृष्टि को एक स्थान पर केन्द्रित करके चित्त को एकाग्र करने की इस विधि को हठयोग का ही एक प्रकार समझा जाना चाहिए। एक तो यह बडी ही स्थूल विधि है और इससे देखा गया है कि आखो की नजर खराब करने के अलावा चचलता समाप्त करने की दृष्टि से कोई विशेष लाभ नही होता। इस विधि से आत्म शाति की भी कोई खास तरह की प्रेरणा नही मिलती है।

हठयोग नहीं सहज योग–

एकाग्रता लाने के लिये प्राणायाम की विधि भी अपनायी जाती है। प्राणायाम के तीन रूप मुख्य है– पूरक, रेचक और कुम्भक। श्वास ग्रहणा–निरोध–विमोचन के माध्यम से ये विभिन्न प्रक्रियाये पूरी हो जाती है। अत प्राणायाम का मुख्यत सम्बध शरीर के साथ होने से इसका रूप भी स्थूल ही रह जाता है। मन की सूक्ष्म क्रियाओ को प्रभावित कर सके, ऐसा प्रभाव कम ही देखा जाता है। यह अवश्य है कि प्राणायाम से श्वास पर कुछ सीमा तक काबू पाया जा सकता है। कभी–कभी तो प्राणायाम की कुभक आदि प्रक्रिया से मस्तिष्क की बारीक नसे फट जाती है और साधक जीवन भर के लिये या तो विक्षिप्तता का बोझ मोल ले लेता है अथवा अपने जीवन से ही हाथ धो बैठता है। ऐसा कुप्रभाव किसी गलत प्रक्रिया से हो जाता है। समाधि के द्वारा भी कई लोग मानसिक नियत्रण करना चाहते हैं। समाधि मे श्वास को कपाल मे चढा लेते हैं और

फिर पच भूत मे से एक–एक तत्त्व की साधना की जाती है। इसमे भी श्वास क्रिया का ही मुख्य प्रभाव रहता है। समाधि के द्वारा दिल की धडकन तक को रोक लेते है। किंतु ये सारे उपाय बाहरी स्थिति पर आधारित होने से अपने स्थूल रूप मे ही शरीर की विशेष क्रियाओ को नियत्रित करते हैं। ये मन की सूक्ष्म चचलताओ का निग्रह करके उसे स्थायी रूप से सद्विचारणा मे स्थिर कर सके हो, ऐसा नहीं पाया गया है। हठयोग की अपेक्षा सहजयोग की स्थिति के साथ यदि मन की चचलता को समाप्त करने की कोशिश की जाय तो चचलता से निवृत्ति मिल सकती है। साहजिक योग की प्रक्रिया के लिये केवल बाहरी साधनो के उपर ही अवलम्बित नही रहना है, बल्कि बाहरी साधनो की सहायता के बाद साधना को अतर की कडियो से जोडना पडता है।

मन एक शक्तिशाली तुरंग

मन ऐसा चचल घोडा है, जिस पर नियत्रण न कर सके, तो वह न जाने कहा–कहा और कैसी–कैसी स्थिति मे गिराता रहता है, जिसका कोई अनुमान लगाना भी कठिन है। परतु यदि इसी घोडे को आप एकाग्रता की लगाम लगा सके तो फिर इसके समक्ष शक्तिशाली एव गतिशील भी दूसरा अन्य साधन नही मिलेगा। लगाम से पूरी तरह नियत्रित यह घोडा फिर आत्म–विकास–पथ पर इतनी सतुलित और स्वस्थ गति से चलेगा कि फिर आपकी चरम यात्रा आसान बन जायेगी। कहा गया है कि "मन एव मनुष्याणा कारण बध मोक्षयो ।" मनुष्य के बध या मोक्ष का कारण मन ही होता है। मन का चचल घोडा बेकाबू है, तो वह बध करता जायेगा, जिसके कारण आत्मा कर्मो से बधकर जन्म–मरण के चक्र मे भ्रमित होती रहेगी। किंतु यदि घोडा काबू मे आ जाता है, तो फिर इसी एकाग्र मन के जरिये मोक्ष तक की महायात्रा सफलता पूर्वक पूरी की जा सकती है। अतर की कडियो को जोडकर ही मन की चचलता को मिटाया जा सकता है, ऐसा मेरा मानना है। बाहर के साधन मन पर

मार कर सकते है, मगर उसकी चचलता को रोक नही पायेगे। ये अतर की कडियां अब अरिहत परमात्मा के दिव्य स्वरूप चितन के साथ जुडती हैं, तब उनका सीधा प्रभाव मन की चचलता पर पडता है। एकाग्रता ही चचलता की विपरीत स्थिति होती है, तो चचलता का अभाव हो जायेगा। भगवान के दिव्य स्वरूप मे मन जब एकाग्र होता है, तो स्वाभाविक रूप से उसकी चचलता समाप्त हो जाती है।

मन एक पंखा

आतरिकता के इस जीवत प्रयोग को एक दृष्टात से समझिये। एक छत का एक पखा बिजली के करट से चल रहा है। उसकी गति तीव्र होती है उसमे चचलता होती है। उसके चलते वक्त यदि गर्मी का तापमान बढ जाये और वह साधारण सीमा से ऊपर चला जाये तो पखे की हवा का अनुभव भी कैसा बन जायेगा ? मैंने तो सुना है, स्वय ने कभी अनुभव नही किया। कितु आप ही लोगो मे से कुछ कहते है कि वैसी स्थिति मे पखे की हवा से इतनी ज्यादा गरम हो जाती है कि उसे सहन करना मुश्किल हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि तब पखा बद कर देने की जरूरत पैदा हो जाती है। अब कल्पना कीजिये कि उस पखे को बद करने की जिम्मेदारी ऐसे आदमी पर आ जाये जो यह नही जानता कि इस चलते हुए पखे को बद कैसे किया जा सकता है ? तब वह पहले अपने शरीर की ताकत का प्रयोग करना चाहेगा, कितु उसका परिणाम क्या होगा, या तो वह बिजली का झटका खायेगा या पखे की पत्तियो का धक्का खाकर शरीर के किसी अग को नुकसान पहुचायेगा। सोचिये, वह अपने हाथ से उसे नही रोककर किसी रस्से की सहायता से उसे रोकने की कोशिश करता है तो भी उसे सफलता नहीं मिलेगी। पखा टूट तो जायेगा, कितु करेट रहते हुए अन्य किसी विधि से वह रूकेगा नही। कितु जो उसकी सही विधि को जानता है वह तत्काल उसके बटन को बद कर देगा और पखा रूक जायेगा। पखे के चलने के मुख्य कारण को जो नही समझ पाया, वह उसे बद भी नहीं कर

सकेगा। बिजली का करेट उस पखे के चलने का मुख्य कारण है और उस कारण को समझकर जो, जब चाहे, पखा चला सकता है और उसे बद भी कर सकता है। सूत्र छोटा सा है, कितु जब तक चित्त मे जमे नहीं तो बाधा बडी– बनकर ही हमारी सफलता के बीच मे खडी रहती है। आप बाहरी पखे का रूपक तो समझ गये हैं, कितु अब अदर के रूपक को समझने की भी कोशिश कीजिये। आपके अदर भी मन का पखा घूम रहा है। उस मन के पखे को पकडने की लोग तरह तरह की विधिया ला रहे हैं। चेष्टा या रस्से से उसे रोक लेने की कोशिश को आप त्राटक कहिये, बात एक सी है। इन विधियो से मन के पखे पर कुछ चोट की जा सकती है या स्वय के शरीर पर चोट खाई जा सकती है, कितु बिजली के करेट के तुल्य मन के चचल परिणामो को बद नही किया जा सकता है,उसके बिना मन का पखा बद भी नहीं होता। बिजली के करेट के तुल्य है मन के परिणामो की चचलता और उसका बटन है आत्म–निग्रह। इसके लिये साहसिक योग कारगर बन सकता है आत्म निग्रह के आदेश से ही परिणामो की गति हो सकेगी। तब वह गति सार्थक रूप से होगी। परिणामो की बिजली का करेट जब नियत्रित गति से चलेगा तो मन का पखा भी आवश्यक रीति से ही घूमेगा।

क्रमिक साधना

आत्म–निग्रह को प्राप्त करने के लिये नियमित साधना का क्रम बनाना होगा। चौबीस घण्टो मे से अगर एक घण्टे के लिए भी यह सोचा जाये कि मन रूपी पखे का बटन कहा है, और उसका उपयोग कैसे किया जा सकता है, तथा इसे जानने के बाद उस बटन को काम मे लेने की कला का अभ्यास किया जाये, तो फिर कैसे सम्भव होगा कि मन का पखा मनमाने तौर पर चचल गति से घूमता ही जाये और किसी से रूके नहीं ? पखे का चलना फिर पखे के हाथ मे नही होगा, बटन के काबू मे होगा। बस इसी बटन को पाने और उसका सदुपयोग करने की स्थिति बन जाये तो समझिये कि अरिहत

परमात्मा की भक्ति और सेवा का एक बहुत बडा भेद हाथ लग गया है। जब तक मन को समझकर उसकी चचलता को रोकने की कला आपके हाथ मे नही आयेगी, तब तक चाहे कितनी ही अन्य विधियो का प्रयोग कर ले, वास्तविक सफलता हाथ नही लगेगी।

बुनियादी तौर पर मै यह बताना चाहता हू कि मन के परिणामो की चचलता को समाप्त करने के लिये पहले उन परिणामो को चचल बनाने वाले कारणो को भली–भाति समझा लेना होगा। तब बाद मे उनसे सघर्ष करके उन कारणो को मिटाना पडेगा। ऐसे कौन–से कारण हैं– कौन–से निमित्त बन रहे हैं, जिनसे परिणाम चचल होते रहते है ? ऐसे कौन–से ढग हो सकते है, जिनके द्वारा चचल परिणामो के समय भी विचलित होने से रूका जा सकता है ? इस सारी प्रक्रिया को ध्यान मे रखकर उन मुलभूत कारणो पर पहले अकुश लगाना होगा और वह अकुश लगेगा समीक्षण ध्यान के द्वारा ध्यान की प्रक्रिया के अतर्गत समीक्षण ध्यान ही ऐसा स्विच (बटन) है जो मन के पखे को क्षण भर मे रोक सकता है।

□□

3. समीक्षण का मनोवैज्ञानिक रूप

वीतराग प्रभु श्री सुपार्श्वनाथ की प्रार्थना मे ललना शब्द का प्रयोग हुआ है और वह भी सम्बोधन के रूप मे। ललना को सम्बोधित करना एक गहन अर्थ का द्योतक है और वह अर्थ है बुद्धि का समीक्षण अथवा चेतना का समीक्षण। ललना शब्द का मानव के मस्तिष्क मे जो अर्थ है वह प्राय स्त्री पर्याय से सम्बधित है। लेकिन यहा सम्बोधन समग्र आत्माओ के लिये है, कि सिर्फ स्त्री पर्याय वाली आत्माओ के लिये।

जितनी भी आत्माए हैं, उनके भीतर जो चेतना शक्ति है– वह शब्द स्त्रीलिग का है, इसलिये ललना शब्द का प्रयोग किया गया है। उसी चेतना को जागृत करने के लिये साधना के विविध आयाम उपस्थित हुए है। वह आत्मा और उसकी चेतना कहा है, किस स्थान पर है ?– वह इन चर्म चक्षुओ से दृष्टिगत नही होती है, लेकिन उसकी प्रक्रिया सम्पूर्ण जीवन को आप्लावित कर रही है। इस जीवन मे जो कुछ भी चमक है, जैसा भी व्यवहार दृष्टिगत हो रहा है, वह सब इसी चेतना का परिणाम है। इस प्रज्ञा के कारण का नाम है– 'समीक्षण ध्यान'। समीक्षण ध्यान की साधना आत्म–बुद्धि अथवा आत्म–चेतना के स्वरूप की दर्शिका है।

समीक्षण-जीवन के स्तरों का

वर्तमान परिवेश मे वह चेतना अपने स्वय के रूप मे स्थिर नही रह पाई है। उसने अपना परिवेश बदल दिया है। वह दूसरे रूप मे चल रही है। सदा से वह आवरणो से घिरी हुई है। उन आवरणो के पीछे ही वह अपना कार्य कर रही हे। स्वय को स्वय की अनुभूति नही हो रही है। इसलिये इस चेतना के लिये स्वय को पाने की दृष्टि से वर्तमान जीवन का समीक्षण आवश्यक है। वर्तमान जीवन के विभिन्न स्तरो का, विविध आवरणो तथा पर्दो का समीक्षण करेगे तो

एक दिन उस चेतना तक भी पहुच सकेगे। इस चेतना को ही 'ललना' के नाम से सम्बोधित किया है, इसी चेतना को जानने और समझने की आवश्यकता है।

यह शरीर, जो सबकी दृष्टि मे आ रहा है, उसके और मन के बीच मे कुछ अतर है किंतु दोनो मे परस्पर गहरा सम्बध है। यद्यपि शरीर और मन एक दृष्टि से एक दिखाई देते है, लेकिन प्रक्रिया की दृष्टि से जब उन दोनो को देखते है, तो दोनो मे भिन्नता स्पष्ट मालूम होती है। शरीर अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति मे मन की सहायता के बिना स्वय सक्षम नही होता है। शरीर पर कोई आघात पहुचाता है और मन उसके साथ लगता है, तभी यह ज्ञात होता है कि शरीर को दु ख या कष्ट हो रहा है। जब तक यह महसूस नही करता कि शरीर को कही आघात लगा है, तब तक अनुभव मे कष्ट का सुस्पष्ट आभास नही होता है।

उदाहरण के तौर पर आप देख सकते हैं कि डॉक्टर जब शरीर के किसी अवयव का आपरेशन करना चाहता है तो उस भाग मे पहले वह अमृत तत्व का इजेक्शन लगा देता है जिससे मन और शरीर के बीच के सम्बध को वह शून्य बना देता है। इससे शरीर की सूचना मन तक नही जाती और डॉक्टर अपनी इच्छानुसार रोगी को बिना कोई कष्ट महसूस कराये ऑपरेशन कर देता है। मन को नही जुडने देने पर शरीर के साथ कैसा भी व्यवहार किया जाता है तो उसकी अनुभूति नहीं होती है। अवयव को काट देने पर भी मन से कष्ट का सम्बध नही जुडता है, क्योकि मन तक उसकी सूचना नही पहुचती है। बीच के माध्यम की दृष्टि से आप स्वय शरीर और मन की स्थिति को समझने का रूपक ले। इस दृष्टिकोण से यह मालूम होगा कि शरीर की अवस्था अलग आवरण के रूप मे है। और मन की स्थिति कुछ और है। चेतना अपना स्वरूप भूलकर मन और शरीर के चलाने से चल रही है तथा मन भी अपनी तीव्र गति से दौड रहा है और अपने साथ दूसरे तत्वो को भी दौडा रहा है। यही आकर चेतना आत्म–विस्मृति की ओर उन्मुख होती है। मन का भटकाव

बुद्धि, शरीर एव चेतना सबको भटकाता है।

समीक्षण : शरीर और मन के सम्बंधों का

जहा तक सिर्फ मन का विषय है, वह अपना सम्बध शरीर से नही जोडता है, तब तक शरीर के कष्ट अथवा उसकी अन्य प्रकार की अवस्था का अनुभव नही हो सकेगा। आप चल रहे है, अपनी धुन मे और अचानक आपको लगा कि अपना एक घनिष्ठ मित्र बहुत दिनो बाद दृष्टि मे आया है। उसे देखते ही आपका मन प्रफुल्लित हो उठा और अनुभव हुआ कि बहुत दिनो मे बिछुडा अनन्य स्वरूप मित्र मिल गया और सामने आ गया। आप हर्ष विभोर होकर आगे बढे। जैसे ही आपने दृष्टि फैलाई और समीप गये तो आपको ज्ञात हुआ कि वह आपका मित्र नहीं है। भ्रम हो गया, वह तो कोई दूसरा व्यक्ति है। उस समय आपके मन मे क्लान्ति आ गई– आप अपने मन मे मुरझाने लगे। यह क्या हुआ ? यह मुरझाना और प्रफुल्लित होना क्या सीधे शरीर से बन पडा है ? नही, ऐसा नही हुआ। शरीर के पीछे यह मन का कार्य हुआ है। शरीर को कोई विशेष कष्ट का प्रसग नहीं आया, लेकिन मन की गतिविधि का शरीर पर प्रभाव पडा।

मन और शरीर के सम्बध परस्पर इतने प्रभावोत्पादक होते हैं कि इन सम्बधो का एक दूसरे को परिणाम भी भुगतना पडता है। शरीर को कोई कष्ट नहीं हुआ, लेकिन मित्र के मिलन–भाव से मन को जब प्रफुल्लता हुई तो शरीर भी आह्लादित हुआ और जब वह अपना मित्र नही निकला तथा मन मुरझा गया तो शरीर की आकृति भी निराश और फीकी दिखाई देने लगी। क्योकि मन के अनुभव की छाया शरीर पर पड जाती है। इसलिये मन का असर स्वाभाविक रूप से शरीर पर पडता है। मन के साथ शरीर भी प्रफुल्लित होता या मुरझाता हुआ दिखाई देता है। यह मन का अपना स्वभाव या स्वरूप है।

लेकिन इस प्रकार के मन को शास्त्रीय दृष्टि से द्रव्य मन

कहा जाता है। इस मन के परिवेश मे अनेक तरह के सस्कार और अनुभव होते हैं– विविध प्रकार की कलाए समाई हुई रहती है। मन की स्थिति जितने रूपो मे समझी जा रही है, उतनी ही नही है। मन की स्थिति बहुत विशाल है, उसका अनुभव लेने का दृष्टिकोण अत्यत व्यापक है। यदि मन को विधिपूर्वक साधा जाये तो इसके स्वरूप को विराट भी बना सकते है। लेकिन इस मन की स्थिति को समझने के लिये बहुत बडे अभ्यास की जरूरत है। ऐसा अभ्यास वर्तमान युग के मानव के पास बहुत कम रह गया है। मन और शरीर के सम्बधो तथा अनुभव लेने के गूढ रहस्यो तक नही पहुचा जा सकता है।

समीक्षण–मन को साधने के प्रयोग

मन की गतिविधियो को नही समझ पाने के कारण ही मन के विषय मे अलग–अलग व्यक्ति अलग–अलग प्रकार से उलझते रहते हैं। अधिकाश व्यक्ति मन की समस्याओ से खिन्न हो जाते है, कि हम धर्म–ध्यान करने बैठते है, सामायिक पौषध कर रहे है और प्रभु का ध्यान लगाने की चेष्टा करते हैं, लेकिन यह मन एक जगह नही ठहरता है, पल मे कही का कहीं चला जाता है। यह मन कहा जाता है, कहा से कहा तक दौड लगाता है और क्यो इतना चचल बना रहता है– इस तथ्य की खोज मनोवैज्ञानिक दार्शनिको तथा आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ताओ ने की है।

मनोवैज्ञानिक इस मन की भिन्न वृत्तियो की खोज करने निकले, तथा उन्होने वैज्ञानिक तरीको से मन को साधने के प्रयोग भी किये। मनोविज्ञान के क्षेत्र मे एडमड, फायड का बडा नाम है, उन्होने बहुत कुछ रूप मे मन की गहराई मे उतर कर मन के स्वरो को खोजा, लेकिन उनकी वह खोज केवल भौतिक दृष्टि से हुई। उन्होने मन की गति का मूल मनुष्य की वासना को माना।

मनोवैज्ञानिक समीक्षण

फायड ने अपने दीर्घकालीन अन्वेषण के द्वारा मन की विविध

वृत्तियो की खोज की, जिन्हे उसने दो भागो मे विभक्त किया (1) कान्सियस माइण्ड (2) अनकान्सियस माइण्ड। इसके पश्चातवर्ती मनोवैज्ञानिक युग ने कुछ और आगे बढकर एक और मस्तिष्क अथवा मनोभाव की खोज की– 'कलैक्टिव अनकासियस'।

खोज का यह सिलसिला आगे बढ गया और वर्तमान मनोविज्ञान यहा तक पहुच गया है कि उसने मनो जगत को सात मजिला मकान माना है। अर्थात मनुष्य का जीवन सात मजिली बिल्डिग है। उसमे हम पहली मजिल मे ही जीते और मर जाते है। कोई विरला साधक ही सातो मजिलो के द्वार उद्‌घाटित कर जीवन के गहनतम रहस्यो का समीक्षण कर पाता है और अपरिमेय आनन्द का अनुभव करता है।

वर्तमान मनोविज्ञान द्वारा मान्य सात मजिले या सात मस्तिष्क निम्न है– (1) कान्सियस माइण्ड– चेतन मन। उसके नीचे (2) अन्कान्सियस – अचेतन मन। उसके नीचे (3) कलेक्टिव कान्सियस– समष्टि चेतना। उससे भी नीचे (4) कास्मिक अन्कान्सियस– ब्रह्म चेतन। जिस पर हम रहते है,उसके ऊपर एक मजिल है (5) सुपर कान्सयस– अति चेतन। उसके उपर है (6) कलैक्टिव कान्सियस– समष्टि चेतन। उससे भी उपर (7) कास्मिक कान्सियस– ब्रम्ह चेतन। जहा हम रहते है उससे ऊपर तीन और नीचे तीन मजिले है।

मनोविज्ञान की खोज मे– मन के गूढ स्वरूप की तह मे इससे अधिक गहरा प्रवेश नही किया जा सकता।

लेकिन वीतराग देवो ने अपने जीवन को सर्वोच्च्य स्तर तक ऊपर उठाया तथा मन की गहरी से गहरी थाह ली– मन की शक्ति को उन्होने मूल तक पहिचाना। मन की विभिन्न परतो को उन्होने उद्‌घाटित किया तथा मन के गूढ रहस्यो का ज्ञान किया। गहराई तक मन का पता लगाकर उन्होने निर्णय दिया कि यह चेतना, जिसकी दिखाई देने वाली स्थूल क्रियाओ को दुनिया देखना चाहती है, शरीर तक ही सीमित नही हे। यह चेतना शरीर से वहुत ऊची हे और शरीर से वहुत महान हे। उन्होने अनुभव किया और देखा कि

द्रव्य–मन साधन है, कठपुतली के समान है। वे इस द्रव्य–मन से भी बहुत ऊपर उठे। उन्होने भाव–मन का अनुभव लिया और अपनी अन्तश्चेतना के दर्शन किये। मन के समस्त विकारो को परास्त कर दिया और वे विशुद्ध चितन मे निज स्वरूप को प्राप्त करके सदा–सदा के लिये परम आनन्दमय बन गये। ऐसी आनन्दमयी आत्माए 'जिन' शब्द के सम्बोधन से पुकारी गई। जिनको 'जिन' भगवान कहते हैं, वे ऐसी ही आत्माए है। जिन्होने अपने आतरिक शत्रुओ को जीतकर अरिहत पद प्राप्त कर लिया। इन्ही अरिहतो ने साधनावस्था मे मन की सम्पूर्ण खोज की, मन को साधने के लिये अनेक उपाय प्रयोग मे लिये तथा श्रेष्ठ और सफल उपायो की ओर अग्रसर होने के लिए ससार को निर्देश दिया। वही वाणी आज हमारे ज्ञान और कर्म का प्रधान सम्बल है।

आवरणों का समीक्षण और उद्घाटन

जितने 'जिन' भगवान हुए है, उन सबको सुख तथा सम्पत्ति के हेतु बतलाया गया है। यह सुख और सम्पत्ति का जो उल्लेख किया गया है, मैं समझता हू कि इसके द्वारा अपने मन के विभिन्न आवरणो को ही देखने, उन आवरणो को समाप्त करने की दृष्टि से जमाने की ही कोशिश की गई है।

यह मन का विषय ऐसा है कि यदि सम्यग्विधि से समीक्षण किये बिना इसे लक्ष्य की तरफ मोडने की कोशिश की जाती है तो मन वहा से दूर–दूर भागने की चेष्टा करता है। याद रखिये, जब तक मन के विषय को गहराई से नही समझेगे तब तक मन पर नियत्रण प्राप्त नही किया जा सकेगा। मनोनियत्रण के अभाव मे परमात्मा को विधिपूर्वक वदन भी नही कर पायेगे, जिस वदन को कवि ने सुख और सम्पत्ति का हेतु बताया है। इस दृष्टिकोण से ही मै वर्तमान मन की वृत्तियो से ऊपर उठने का सकेत दे रहा हू। इस मन से सम्बधित आध्यात्मिक दृष्टि को आप ध्यानपूर्वक समझे तथा उस पर चितन–मनन

करे।

अनादिकाल से इस ससार मे परिभ्रमण करते हुए तथा सासारिक विषयो मे आसक्ति रखते हुए इस आत्मा मे निज स्वरूप की प्रतीति के प्रति सज्ञाहीनता सी आ गई है और उसके कारण इस मन पर भी कई पर्ते चढ गई हैं– कई आवरण आ गये है। मन उन आवरणो मे ही अपनी स्वरूप सज्ञा लेने लगा है। इस द्रव्यमन की गति भी भाव मन के निर्देशन के बगैर नहीं होती है। मनुष्य उच्चारण करता है कि मै परमात्मा के तुल्य हू लेकिन उसका उच्चारण द्रव्य मन के आधार पर होता है, परतु भाव मन के बिना ही। सही स्वरूप दर्शन को आतरिक अनुभव के साथ जब भीतर की गहराई मे पहुचते हैं तभी होता है और तभी वस्तुस्थिति सामने आती है। इतनी आतरिकता मे उतरने को ही समीक्षण की परम अवस्था कहा जाता है। जहा पहुचकर 'जिन' के स्वरूप की उपलब्धि होती है।

बात बहुत गहन है, आप स्वय को इस गहनता की स्थिति मे कैसे ले जायेगे ? एक छोटा–सा रूपक ले लीजिये। यह रूपक लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व का है। एक वृक्ष के नीचे एक पुरुष बैठा हुआ था। एक सामुद्रिक विज्ञान मे निपुण व्यक्ति उधर से निकल रहा था। सामुद्रिक विज्ञान मे इस बात का वर्णन होता है कि शरीर के कौन–कौन से चिह्न किस–किस बात की सूचना देते हैं ? उस सामुद्रिक ज्ञाता की दृष्टि जमीन की तरफ थी। जमीन पर उसको कुछ पैरो के चिह्न दिखाई पडे। वह हर्षित हो उठा। वे चिह्न किसी विशिष्ट पुरुष के पैरो के थे। वह चक्रवर्ती सम्राट भी हो सकता है– उसने सोचा। वह प्रसन्न हुआ कि यदि उसकी विद्या सही है तो आज मार्ग मे चक्रवर्ती सम्राट से उसकी भेट जरूर होगी। उनके शारीरिक चिह्नो से वह उन्हे और कुछ बता देगा तो उसका भाग्य खुल जायेगा।

वह सामुद्रिक प्रसन्नतापूर्वक आगे बढने लगा। यकायक उसे विचार आया कि क्या सम्राट पैदल जायेगे ? वे बिना वाहन के कैसे

जा सकते है ? अब उसके मन मे सशय पैदा हुआ। खुले पैरो के चिह्न चक्रवर्ती के कैसे हो सकते है ? उसका मन डगमगाया और शका करने लगा कि क्या उसकी विद्या सही नही है ? यहा तक कि उसे वे पैरो के निशान किसी मामूली मजदूर के मालूम पडने लगे और उसकी इच्छा हुई कि वह अपने पोथी–पन्नो को कुए मे फेक दे। वह दुविधा मे फस गया। उस वृक्ष के समीप वह पहुचा तो उसे वह पुरुष दिखाई दिया, जो सादे वेश मे फक्कड तबियत का लग रहा था, शरीर की आकृति आकर्षक, कितु परिवेश से गरीब साधारण मालूम पडता था। पास मे एक भीक्षा पात्र पडा हुआ था। उसने मन ही मन पहले दोनो पैरो के चिह्नो से उसके पास जमे पैरो के चिह्नो का मिलान किया, उसको ऐसा लगने लगा कि उसने किस प्रकार के सामुद्रिक विज्ञान का अध्ययन किया है ? वह चिताग्रस्त बन गया। उसकी चिन्तित मुद्रा को देखकर उस सत ने आवाज दी– अरे तू चिन्तित क्यो है ? मेरे पास आ। उस व्यक्ति ने उत्तर दिया– तुम मेरी समस्या को क्या समझोगे ? तुम तो साधारण से भिखारी मालूम पडते हो। फक्कड सत ने गम्भीरता से कहा– क्या पता, समस्या का हल ही निकल जाये। आओ तो सही।

सामुद्रिक ने सारी बात पूरी तरह से समझाकर उस महात्मा को कही। महात्मा ने कहा– तुम्हारा चिन्तन सही दिशा मे है। तुम्हारा यह अनुमान सही है कि मेरे ऐसे पदचिह्न वाला पुरुष चक्रवर्ती हो सकता है। तुम्हारा सामुद्रिक ज्ञान इस अर्थ मे गलत नही है। लेकिन वर्तमान की स्थिति को समझने मे ही तुम भूल कर रहे हो। अपनी ओर सकेत करते हुए उस फक्कड महात्मा ने आगे कहा– यह शरीर उसी क्षेत्र मे जन्मा था जहा चक्रवर्ती पद प्राप्त करने का अवसर था। लेकिन इस जीवन मे कुछ बोध हुआ, शरीर की बाहरी प्रकृति का समीक्षण किया तथा भीतरी मन के विभिन्न आवरणो को समझने का प्रयास किया तो मुझे वह चक्रवर्ती सम्राट का पद एकदम फीका लगने लगा। मैंने उसे पाने का उपक्रम छोड दिया, क्योकि वह कल्याणकारक नही है। मुझे लगा कि मुझे इसमे श्रेष्ठ पद की खोज करनी चाहिये, जो

चक्रवर्तियो का भी चक्रवर्ती हो और मै इस आध्यात्मिक जीवन की तरफ मुड गया। मैंने उस चक्रवर्ती पद को पाना उचित नही समझा। मैने सोचा कि इस आत्मा और मन पर पहले से ही कई पर्दे पडे हुए है– फिर एक नया पर्दा और क्यो चढाउ ? इससे तो अच्छा यही है कि जो पर्दे पडे हुए हैं उन्हे और अन्य आवरणो को उद्घाटित करू। वह समुद्र–शास्त्र का विद्वान उस फक्कड को आखे फाड फाड कर देखने लगा।

कहने का अभिप्राय यह है कि जो मन के विभिन्न आवरणो का समीक्षण कर लेता है, वह ससार के बडे से बडे वैभव का भी सहज भाव से परित्याग कर देता है, क्योकि वह तो अविनाशी सुख सम्पत्ति को पाना चाहता है। इसलिये वह मन के इन आवरणो का समीक्षण और उद्घाटन करता है तथा शुद्ध चेतना का परम शुद्ध स्वरूप मे दर्शन करता है।

समीक्षण अविनाशी का

भक्ति–साधना मे आमतौर पर यह माना जाता है कि भगवान को वदन करने से सुख सम्पत्ति मिलती है। अधिकाश लोगो के मन मे इसी भावना का प्रवाह होता होगा। क्या इस सुख सम्पत्ति को आप इस बाहर दिखाई देने वाली सुख सम्पत्ति के रूप मे देखना चाहते है ? यदि ऐसा है तो समझिये कि यह एक गलत चाह है। इस सुख सम्पत्ति को आज की भौतिक सुख सम्पत्ति के रूप मे न देखे। अपने मन मे पहले यह निश्चय करे कि आप नाशवान सुख सम्पत्ति को चाहते हैं या अविनाशी सुख सम्पत्ति को ? यदि अविनाशी सुख सम्पत्ति को चाहते हैं तो वह एक बार आपको मिल जाने के बाद सदा–सदा के लिये आपके साथ मे ही रहेगी। ऐसी अवस्था मे न चाहने पर भी नाशवान सम्पत्ति भी अविनाशी सम्पत्ति के पीछे–पीछे छाया की तरह चलेगी। आपको ऐसे सुख सम्पत्ति वाले विशिष्ट पुरुषो के चरित्र सुनने को मिले होगे और उनसे आपको प्रेरणा मिली होगी

कि वास्तविक सुख सम्पत्ति की प्राप्ति का प्रयास ही किया जाना चाहिये।

आन्तरिक चेतना जब सजग बन जाती है तो उसे यह बाहर की नाशवान सम्पत्ति मूल्यहीन दिखाई देती है। त्रिखण्डाधिपति श्री कृष्ण के भाई गजसुकमाल ने जागृत बनकर जब दीक्षित होने का निश्चय किया तो किसी के भी कहने से वे रुके नही। उनमे उमग समा गई कि इस नाशवान सम्पत्ति का मोह छोड कर अविनाशी सुख सम्पत्ति प्राप्त करने की दिशा मे आगे बढना चाहिये, ताकि वह सम्पत्ति कभी नष्ट नहीं हो और सदा के लिये आत्मा को आनन्दमय बनाये रखे और वे उस अविनाशी सम्पदा के महा खजाने को प्राप्त करने, उसका द्वार उद्घाटित करने हेतु निकल पडे – कठोरतम साधना पथ पर। इस उमग को जीवन्त बनाने वाली आत्माएँ अबाध सुख व महान् और विशिष्ट स्थान को प्राप्त करती हैं।

आपको भी सुख सम्पत्ति चाहिये और यह विश्लेषण करने के बाद तो आप भी यही कहेगे कि हमको भी अविनाशी सुख सम्पत्ति चाहिये। जिसका विवेक जागृत हो जाता है वह श्रेष्ठ वस्तु ही ग्रहण करना चाहेगा। आम को छोडकर जो निम्बोली के पीछे भागता है, उसको दुनिया अक्ल मद नही कहती है। जिन आत्माओ ने अविनाशी सम्पत्ति को प्राप्त करने का सकल्प किया है, वे समीक्षण ध्यान की साधना का पाथेय लेकर ही आगे बढी हैं। समीक्षण ध्यान के साधक ससार के सारे लुभावने वायुमडल से ऊपर उठकर महावीर प्रभु के आध्यात्मिक अनुशासन मे समर्पित होने को सकल्पित होते है, ताकि वे अपनी आत्मिक साधना मे तत्पर बन सके। वे अपने अभ्यास के साथ स्वस्थ जीवन निर्माण के इच्छुक होकर नाशवान सम्पत्ति को छोडते हें, और अविनाशी सुख सम्पत्ति को प्राप्त करने की अभिलाषा से दीक्षित यनते है। आपको भी तो सुख सम्पत्ति चाहिये ना ? आप भी इस दिशा मे आगे बढने के लिये कुछ ना कुछ ठोस कार्य अवश्य करे।

विकारपूर्ण वातावरण से मन को अप्रभावित बनावें

अधिकाश मानव आज भौतिक जीवन की दूषित प्रणाली मे बह रहे है। मै समझता हूँ कि रेतीले प्रदेश मे तेज हवाए चलने के कारण रेती के कण काफी उडते है और धूल भरी आधियॉ उडती हैं। रेत के टीले के टीले इधर से उधर उड जाते है। जैसे ये रेत की आधियॉ चलती हैं, वैसा ही इस सासारिक जीवन का प्रसग है। चारो और तरह–तरह के विकारो की धूल भरी आधियॉ चलती हैं। सिनेमा घरो से वासना का अधड निकलता है। कामुक साहित्य व जासूसी उपन्यासो के गन्दे नाले बहते हैं। इस विकारपूर्ण वातावरण मे कौन आत्मा कितनी उलझती है– कितनी रचती–पचती है, उसी आधार पर मन का समीक्षण किया जा सकता है कि वह कितना उद्दण्ड है या कि कितना सधा हुआ ? देखते है तो ज्ञान होता है कि अधिकाश तरूण–तरूणिया इस विकारपूर्ण वातावरण मे उलझी हुई है। कई आत्मा तो इस विकार के दलदल मे इतनी गहरी धॅस जाती है कि उनका उससे बाहर निकल आना भी कठिन कार्य हो जाता है।

रेगिस्तान मे जो वृक्ष होते है, वे इन धूल भरी आधियो को भी सहन करते हैं, किन्तु अपने स्थान से डिगते नहीं हैं। वैसे ही जो आत्माएँ अपने चैतन्य स्वरूप के समीक्षण में और उसे चमकाने के लिये सुदृढ–सकल्पी बन जाती हैं, वे इन वृक्षो के समान अपने मन को सारे विकारपूर्ण वातावरण से अप्रभावित बना लेती हैं। यह कार्य ही मन की साधना है– मन को वश मे करना है तथा मन को आत्मा के अधीन बनाकर आत्मविकास के पथ पर चलाना है। समझिये कि एक अकेला मन काबू मे हो जाता है तो सब कुछ काबू में हो जाता है– सारा जीवन काबू मे हो जाता हे और यह जीवन काबू मे आ जाता है तो इहलोक के साथ परलोक भी सध जाता है। आप उन बहनो को देखिये – सन्त, सती वर्ग के दर्शन कीजिये जो समीक्षण साधना के लिये जीवन को लेकर चल रहे हैं। इनके जीवन उन वृक्षो के समान है जो विकारपूर्ण ऑधियो के प्रभाव से अविचलित बने रहने

का अभ्यास कर रहे है। यह अभ्यास मन को एकाग्रकर लेने की दिशा मे चल रहा है।

मन को साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।

इस मानव जीवन मे यदि मन को सम्यक् रीत्या स्वाधीन बना लेते हैं तो आशा की जा सकती है कि उस स्वाधीन मन के चरण पूर्णत स्वाधीन आत्मा की मजिल तक अवश्य पहुँचेगे। एक लक्ष्य नहीं बनावे और चारो ओर की प्रवृतियो मे लगे रहे तो शायद यह उक्ति सच साबित हो जाय कि "सब साधे सब जाय"। इसलिये आत्मिक साधना के माध्यम से जीवन की तह तक पहुँचने का प्रयास कीजिये। यह साधना का क्षेत्र एक तरह से जीवन के तल तक पहुँचने की पाठशाला है। इसमे कौन--कौन प्रवेश कर रहे हैं? महान सकल्पशील, समीक्षण ध्यान साधना की गहराई मे पैठने वाली साधक आत्माए ही। समीक्षण मे मन तत्पर होता है तभी ऐसा हो सकता है और मन के समीक्षण से ही मन सधता है।

मन को साधने का यह आध्यात्मिक जीवन लोहे के चने चबाने के समान है, लेकिन इनको भी चबाने की साधना कर लेगे तो ये लोहे के नहीं रहेगे, अमृत कण बन जाएगे। मूल बात समझले कि-- "मन को साधे सब सधै"। □□

4. जीवन यात्रा का समीक्षण

जब कभी किसी प्रकार की यात्रा का प्रारभ होता है तो उस पर सहज ही चितन चलता है– यात्रा कितनी लबी है, उसका गतव्य स्थान कैसा है और कितनी दूर है, मार्ग किस प्रकार का है, पैरो की गति कितनी रखनी होगी, किस तरह के वाहन की आवश्यकता होगी आदि कई बाते ऐसी होती हैं जिनपर यात्री विचार करता है। अपनी गति एव प्रगति के अनुसार यात्रा के कार्यक्रम का निर्धारण करता है। यदि दृढ सकल्प और उत्साह के साथ चितन करके तदनुरूप व्यवस्था कर अपनी यात्रा पर यात्री प्रस्थान करता है, तो यह आशा की जा सकती है कि उसकी यात्रा सफल होगी। क्योकि मार्ग मे यदि विघ्न भी आए तो वह सफलतापूर्वक उनका मुकाबला कर सकेगा।

यात्रा का ऐसा मनोविज्ञान, समीक्षण की महत्तम साधना के द्वारा ही हो सकता है, और वही उसकी पूर्ण सफलता का लक्षण होता है। छोटी मोटी यात्राए तो ठीक हैं लेकिन यह पूरा मानव जीवन भी स्वय एक यात्रा ही है। इसे जीवन की यात्रा कह सकते हैं। इस जीवन की यात्रा पर पूर्ण रूप से सुदृढ सकल्प, उत्साह सहित तथा सुन्दर सदाशय के साथ जो चल पडता है, वह जीवन की पूर्णता को प्राप्त करता है।

यात्रा का समीक्षण बनाम लक्ष्यानुरूप यात्रा

इस जीवन की यात्रा का श्रीगणेश कब और कहॉ से हुआ है, ये एक जटिल प्रश्न है और सदियो से चला आ रहा है। किन्तु इसका उत्तर उतना जटिल नही है। वैसे तो जबसे सृष्टि है, जीवात्मा की यात्रा गतिशील है ही, किन्तु मुख्य तौर पर जिस क्षण आत्मा इस मानव शरीर के चोले मे आई हे, तभी से जीवन यात्रा का आरभ हो चुका है। यह यात्रा किस प्रकार चल रही हे, किस दिशा मे चल रही हे? यह समीक्षण दृष्टि से चितन का विषय हे। यात्रा की मूलगामी भावना यह

है कि यात्रा लक्ष्यहीन नही हो। कोई निरर्थक और निरूद्देश्य घूमता रहे तो उसको यात्रा नही कहते है। यात्रा का एक पूर्व निर्धारित लक्ष्य होता है किन्तु वह लक्ष्य अविचारित नही होना चाहिये। जीवन का वास्तविक धर्म क्या है और उसके अनुसार सच्चा लक्ष्य क्या होना चाहिये इसका वीतराग देवो की वाणी तथा आत्म समीक्षण के आधार पर निर्णय लेना चाहिये।

जब श्रेष्ठ और स्पष्ट लक्ष्य सामने होगा तो दिशा भ्रम नही होगा। ऐसी अवस्था मे पथ भ्रष्ट होने की भी सभावना कम रहती है। पथ पर गति बनी रहे और लक्ष्य दृष्टि मे हो तो पथ की बाधाए एक दृढ सकल्पी व्यक्ति के सामने अवरोधक नही बन सकती है। वह अविचल गति से आगे बढता है, क्योकि उसकी गति की रूपरेखा स्पष्ट होती है। यह एक सफल यात्रा की पृष्टभूमि होती है।

बाहरी यात्राओ को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि एक देश से दूसरे देश की यात्रा करने वाले यात्री पहले निश्चय करते है– जैसा कि मुझे यहॉ से कलकत्ता जाना है और कलकत्ता मे भी अमुक सडक या अमुक मकान या दुकान पर जाना है। फिर वाहन का निर्धारण करते है कि कहॉ से कहॉ तक बस मे जाना होगा, फिर रेल मे और फिर टेक्सी आदि मे जाना होगा। तब यात्री वैसा टिकिट खरीदते है और सुविधा हो तो स्थान का अग्रिम आरक्षण भी करवाते है। मार्ग मे भोजन आदि की भी व्यवस्था कर लेते है। इतनी पृष्ठभूमि बना लेने के बाद क्या आपको कोई शका रहती है कि आप कलकत्ता नही पहुॅच सकेगे। आप शकाहीन मन से रवाना होते हे और प्राय यथासमय यथास्थान पहुॅच जाते है। ऐसी पृष्टभूमि और ऐसी ही सुव्यवस्था अतरजीवन की यात्रा के लिये हो तो उसमे कौनसी शक्ति वाधा डाल सकती है ? गति की रूपरेखा स्पष्ट हो तो यात्रा मे प्रगति होगी ही।

अंतरंग और बाह्य यात्रा का समीक्षण

इन वाहरी यात्राओ का रूप वाह्य होता हे ओर जीवन यात्रा

का रूप आभ्यन्तर। बाहर की बात को देखना, समझना और उसका अनुसरण करना आसान होता है, लेकिन इस जीवन यात्रा के आतरिक स्वरूप को समझना, आत्म लक्ष्य को स्थिर रखना समीक्षण की समुज्ज्वल साधना पर आस्था का दृढ होना तथा आत्मोन्नति की राह पर प्रगति करना– यह सब कठिन साधना का वस्तुविषय होता है। जीवन की अतरग यात्रा एव बाहरी यात्राओ की वास्तविकता मे काफी अतर होता है। हॉ, दोनो के मनोविज्ञान मे बहुत कुछ समानता देखी जा सकती है।

बाहरी यात्रा की दृष्टि से वाहन का भी सयोग होता है और आज–कल तो वास्तव मे पैरो को इतना कष्ट नहीं दिया जाता। अन्य वैज्ञानिक साधन भी इतने विकसित हो गये हैं कि आज के ज्ञात ससार के एक छोर से दूसरे छोर तक मनुष्य उन साधनो के द्वारा सहज ही पहुँच सकता है। यही नही, आधुनिक साधनो के माध्यम से गगन मे भ्रमण भी चालू हो गया है। आकाश मे राकेटो ओर आकाश यानो के जरिये वह बहुत ऊँचाई तक चले जाने का दम भरता है, लेकिन जाने के बाद लौट कर वापिस यही आ जाता है तो वह कैसी यात्रा हुई ?

इस प्रकार की यात्रा ससार का कौन प्राणी नही करता है? प्रत्येक प्राणी के पास राकेट नही है, लेकिन यह आत्मा अनादि काल से चतुर्गति मे यात्रा कर ही तो रही है। विविध योनियो मे उसकी यात्रा चलती है और लौट–लौट कर उन्ही योनियो मे वह पहुँचती रहती है। सासारिकता मे ही जिनका मन रच बस गया हे, वे भले ही ससार परिभ्रमण की यात्राओ मे तुष्टि का अनुभव करते हो, लेकिन ज्ञानियो की दृष्टि मे वह तुष्टि का विषय नही है। सतोष की स्थिति नही है। वह एक भ्राति है और विगति है।

ऐसी यात्रा तो कोल्हू का एक बैल भी प्रतिदिन करता है। सुवह ही सुवह तेली बेल की ऑखो पर पट्टी वाधकर उसको कोल्हू मे जोत देता है। तव से वह चलना शुरू करता है और दिनभर बरावर

चलता रहता है। बैल मन मे खुश होता है कि दिन भर उसने बहुत ही लबी दूरी तय करली है लकिन सत्य क्या है ? शाम को जब उसकी ऑखो पर से पट्टी खोली जाती है तो उसको दिखाई देता है कि वह तो उसी स्थान पर खडा है जहॉ से उसने प्रस्थान किया था। तब उस बैल की भावना पर तुषारापात हो जाता है कि उसकी यात्रा का क्या हाल रहा? तब वह बैल खुश होगा या पश्चात्ताप करेगा? करीब–करीब यही दशा आज के साधारण मानव की है। कहावत है– "ज्यो घाणी के बैल को घर ही कोस पचास"।

यह तो शरीर की यात्रा है, ऐसी बाहरी यात्राए इतनी महत्वपूर्ण नही होती है। वस्तुत महत्वपूर्ण होती है, आध्यात्मिक क्षेत्र की यात्रा और जीवन के आतरिक विकास की यात्रा।

मन–वाहन का समीक्षण

इस जीवन यात्रा मे यात्री है यह आत्मा, जिसको आध्यात्मिक क्षेत्र की यात्रा करनी है तथा सिद्ध अवस्था के गतव्य तक पहुँचना है। आध्यात्मिक जगत मे जिस आत्मा का गमन होता है, उस आत्मा का लक्ष्य ओझल नही होता है। आध्यात्मिक मार्ग कोई एक गोल घेरा नही होता है जिसके चारो ओर चक्कर लगाले या एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक पहुँच जावे। यह आध्यात्मिक क्षेत्र की यात्रा जीवन समीक्षण की यात्रा होती है। इस यात्रा की ओर ही मानव के चरण गतिशील होने चाहिये, ताकि वह इस जीवन की यात्रा मे प्रगतिशील बन सके।

बाहर की यात्रा के तुलनात्मक दृष्टिकोण से कोई यह प्रश्न कर सकता है कि इस आध्यात्मिक यात्रा के लिये क्या किसी वाहन की आवश्यकता होगी? इधर शास्त्रीय दृष्टि से आप सुनते हैं कि जो आध्यात्मिक क्षेत्र मे परिपूर्ण भाव से प्रविष्ट होकर साधू बनकर चलने की कोशिश करते है, वे तो वाहन का सर्वथा परित्याग कर देते हैं और पेदल विहार करते है, फिर आध्यात्मिक यात्रा मे कौनसे

वाहन की आवश्यकता हो सकती है?

इस आध्यात्मिक क्षेत्र की लबे मार्ग वाली यात्रा मे प्रारभ मे मन व इद्रिया वाहन के रूप मे उपयोगी सिद्ध होती है। यथा कर्णेन्द्रिय के विषय का ग्रहण करते समय अच्छे या बुरे शब्दो के प्रति राग द्वेष की निवृत्तिपूर्वक शब्द–श्रवण मे कर्णन्द्रिय, वाहन के रूप मे हो जाती है। नेत्र के विषय मे अनाशक्त भाव के साथ पदार्थों का अवलोकन करते हुए चक्षुरिन्द्रिय वाहन के रूप मे सिद्ध हो जाती है। घ्राणेन्द्रिय का विषय प्राप्त होने पर भी निन्दा एव जुगुप्सा से रहित नासिका का प्रयोग होने पर वह नासिका वाहन की सज्ञा को प्राप्त होती है। रसनेन्द्रिय से खाद्य सबधी पदार्थो के उपलब्ध होने पर भी स्वाद–जायके मे समभाव को रखना तथा वचन सबधी कर्कशकारी, कठोरकारी, निश्चयकारी, हिसाकारी, छेदकारी, भेदकारी, परजीवो को पीडाकारी सावद्य सपापकारी आदि वाचा के इन अष्ट दोषो से दूर रहने वाली, हित, मित, मधुरतम वाचा का प्रयोग करने वाली जिह्वेन्द्रिय वाहन की श्रेणी मे सम्मिलित हो जाती हे। शीतोष्णादि अनुकूल प्रतिकूल स्पर्शो के विषयो मे रति–अरति भावो से रहित स्पर्शो को सहन करने पर स्पर्शेन्द्रिय भी वाहन मे सहकार प्रदान करने वाली बन जाती है।

मन सभी इन्द्रियो को सहायता प्रदान करता है। उनके द्वारा प्राप्त विषयो पर सकल्प–विकल्पादि के माध्यम से भौतिक पदार्थों की ललक मे रात दिन रचा बसा रहता है। उन्ही की लबी चौडी तृष्णा की जाल का ताना–बना बुनता रहता है। जब मन की वृत्तियो मे समीक्षण दृष्टि का प्रवेश होता है, तब यह मन के जाल जजाल, पम्पाल, सारे भगते हुए दृष्टिगत होते हैं। जैसे सूर्य की किरणो के आते ही अधकार छिन्न–भिन्नता को प्राप्त हो हट जाता हे एव अधकार परिपूर्ण गली मे भी सूर्य की किरणो से गध भी उड जाती है वैसे ही समीक्षण दृष्टि की किरणे मन के अधकार को विच्छिन्न करती हुई इन्द्रियो के विषय रूपी गदगी को भी शुष्क वना देती हे और साधना

का प्रारभ मन और इन्द्रियो से सपन्न होने लगता है और अत मे इस आध्यात्मिक क्षेत्र की दीर्घगामी यात्रा मे आत्मा ही आत्मा का वाहन होती है।

आत्मा मन के घोडे पर बैठकर सुखद एव शीघ्रगामी यात्रा करती है अथवा आगमिक भाषा मे कहे तो–

"सरीर माहुनावुत्ति जीवो वुच्चई नाविओ।
ससारो अण्णवो वुत्तो, जतरन्ति महेसिणो।।"

उत्तरा सू अ 23

अर्थात् यह शरीर एक नौका के समान है और जीवात्मा नाविक है। यह सम्पूर्ण ससार एक समुद्र है जिसे महर्षि–आत्माए पार करती है। आगम मे जल यात्रा का यह सुन्दर रूपक दिया गया है।

आप सिर्फ स्थूल तत्त्वो की विचारणा तक ही सीमित नही रहे। भीतर के विराट् क्षेत्र मे भी प्रवेश करे तो आपको ज्ञात होगा कि वहाँ किसी भी बाहरी वाहन की आवश्यकता नही होती है। बाहरी वाहन ग्रहण करने वाले तो उल्टे मार्ग से भटक जाते है। भीतर चलने के लिये भीतर का ही वाहन चाहिये। शीघ्रगामी से शीघ्रगामी रॉकेट जो स्थूल यत्रो से बने होते है और उनकी शक्ति बहुत ही सीमित होती है लेकिन भीतर का जो वाहन है, उसकी शक्ति असीम होती है– उसकी क्षमता अपार होती है। उस भीतर के वाहन पर आरूढ हो जावे तो वह वाहन गतव्य स्थान पर पहुँचा सकता है। प्रश्न यही है कि उस वाहन पर आरूढ होने की कला सीखे और वह कला है समीक्षण ध्यान योग की– आत्म समीक्षण की अथवा अपने विराट् सामर्थ्य के समीक्षण की।

एक मनमोजी स्वभाव का राजा अपने अनुचरो के साथ राज्य सभा मे बेठा हुआ था। उसी समय सभी की दृष्टि एक अश्वारोही

की तरफ गई। वह घुडसवार कोई विदेशी था। वह घोडे को साथ लेकर ठेठ राज्य सभा मे घुस आया। सबने आश्चर्य प्रकट किया कि यह बिना किसी खयाल के घोडे सहित यहॉ तक कैसे चला आया है? निर्भयता से वह सबके बीच मे आकर खडा हो गया। दीवान ने प्रश्न किया – घोडे सहित यहॉ आ जाने का क्या कारण है? वह बोला मैं दुनिया मे बहुत घूमा हूॅ। कई राजाओ के सामने भी गया, लेकिन मेरी समस्या का हल नही निकला। मैंने आपके राजा साहब की तारीफ सुनी, इसलिये यहॉ चला आया हूॅ। मैं इस घोडे को कभी भी अलग नही करता हूॅ इसलिये इसके सहित मुझे यहॉ आना पडा है। आप जरा मेरे इस घोडे को देखिये।

सभी सभासद बारीक नजर से उस घोडे को देखने लगे। उस घोडे का रूप रग, उसके शरीर की पुष्टता और उसका लावण्य अनुपम था। ऐसा घोडा किसी ने पहले नहीं देखा था। उस विदेशी ने कहा कि जो कोई इस घोडे पर सवारी कर ले तो उसको मैं यह, बिना मूल्य दे दूॅगा। लेकिन इस पर वही व्यक्ति सवारी करने की कोशिश करे जिसको अश्वारोहण की कला आती हो।

जितने लोग राज्य सभा मे बैठे हुए थे, उस घोडे पर सवारी करने के लिये उन सभी का मन मचल उठा। महाराजा का भी मन चलायमान हुआ, मगर वे अपने आपको कुशल नही समझते थे। तब उन्होने अपने राज्य के कुशल अश्वारोहियो की तरफ अपनी नजर दौडाई। अश्वारोही विनम्र थे, वे करबद्ध खडे हो गये और बोले – राजन् ! क्या आज्ञा है? राजा ने एक को सकेत किया, तब घोडे की तरफ वह आगे बढा। घोडे पर नियत्रण पाने के जितने उपाय वह जानता था, उसने एक–एक करके सभी को आजमाया, लेकिन घोडे ने उसको गिरा ही दिया। राजा ने तब एक के बाद दूसरे अश्वारोहियो को सकेत किया, लेकिन सभी पराजित होते गये।

निराशा के वातावरण मे राजा को एक उपाय सूझा और उसने कहा– भाई ! यह घोडा ही सवारी के योग्य दिखाई नहीं

देता है। तुम इसको पकड कर जरूर खडे हो मगर इस पर सवारी कर सकते हो या नही – कौन जानता है, इतना सुनते ही वह तुरन्त घोडे पर सवार हो गया और घोडा उसको वहाँ से ले उडा।

यह तो एक रूपक है। घोडा कैसा भी हो, उस पर सवारी करने की कला आनी चाहिये। यह आत्मा भी इस कला को सीख कर मन के घोडे पर बैठ जाये तो यह वाहन उसका आध्यात्मिक क्षेत्र की सफल यात्रा करा सकता है।

मनका समीक्षण - गन्तव्य का अधिकरण

क्या अपनी आत्मा को भी अश्वारोहण का ऐसा अवसर चाहिये? उस विदेशी का वह बाहर की दृष्टि का अश्व था, लेकिन भीतर का अश्व भी है।

प्रभु महावीर ने उद्घोषणा की है–

"मणोसाहसिओ थीभो दुदृतो परिघावई।
त सम्म तुनिगिम्हायि, घम्मसिवाई कथग।।"

हे मानव, तुम्हारे पास भी मन का एक साहसी घोडा है, लेकिन वह दुष्ट स्वभाव का है। जिस आत्मा को उस घोडे पर बैठने की कला नहीं आई, उसके लिये यह घोडा परम कष्टदायक होता है। इस घोडे का अस्तित्व सदा आत्मा के साथ ही होता है। चाहे यह द्रव्य रूप मे रहे अथवा भाव रूप मे यह मन का घोडा बडा तीव्रगामी होता है। जिस आत्मा को आध्यात्मिक आकाश मे लम्बी यात्रा करनी है और मोक्ष के लक्ष्य तक पहुँचना है तो उसे इसी मन के अश्व पर आरूढ होना पडेगा। लेकिन बात यही है कि उसको इस पर आरूढ होने की कला सीखनी होगी– इस उद्दंड घोडे को अपने कुशल नियत्रण मे लेना होगा। मन के घोडे पर वैठकर उसे नियन्त्रित करते हुए जीवन यात्रा मे सन्तोषजनक प्रगति प्राप्त की जा सकती है।

समय–समय पर आप कुछ बाते जिज्ञासा के रूप मे रखते हैं कि महाराज, हम धर्म साधना और आध्यात्मिक जीवन का चिन्तन करने के लिये बैठते है, लेकिन साधना और चिन्तन चलता नही है– मन कही का कही चला जाता है। जब तक मन स्थिर और नियत्रित नही होता, तब तक बात बनती नही है। इस जिज्ञासा का समाधान इतना ही है कि आपको आरोहण की कला आनी चाहिये और इसके बाद आरोहण हो तो प्रगति अवश्यभावी है। लेकिन प्रश्न यह भी है कि प्रगति किसको कहे?

क्या किसी रॉकेट मे बैठकर इधर से उधर पृथ्वी का चक्कर लगा लेना प्रगति है? सामाजिक क्षेत्र मे कुछ सुधार ले आना प्रगति है? व्यवसाय को उन्नत बना लेना प्रगति कहलायगी? मै इनको प्रगति नही कह रहा हूँ। मेरा अभिप्राय आप समझते हैं। आत्मा की विशेष प्रकार की गति ही प्रगति कहलाती है। वास्तविक प्रगति यही होती है कि आत्मा निजत्व का समीक्षण कर उसे पूर्णतया उपलब्ध कर सके?

तटस्थ भाव से चिन्तन करे तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक व्यक्ति की भावना आगे बढने की होती है और वह सुदीर्घ भविष्य की बात सोचकर अपनी क्राती की रूपरेखा बनाता है। जो जितना आगे की सोचता है, उसको दुनिया उतना ही प्रगतिशील कहती है। जो ऐसा नहीं करते, वे अप्रगतिशील या प्रगति–विरोधी कहलाते हैं। ऐसी आगे की बात किसी भी सासारिक विषय के लिये सोची जाय– जैसे आर्थिक या व्यावसायिक क्षेत्र की बात हो तो वह कला क्या प्रगतिशील है? व्यक्ति अपने ही औजारो से दुनिया को नापना चाहता है और उसकी ही अनुरूपता मे प्रगति की व्याख्या करने लगता है लेकिन उसकी प्रगति उस कोल्हू के वैल के समान ही होती हे। दो पैसे कमाकर या वाल वच्चो का ठीक से भरण पोपण कर भला क्या आप जीवन यात्रा मे प्रगति कर लेते है? ऐसा भली प्रकार से कर लेने के वाद जव सासारिकता की पट्टी को अपनी ऑखो पर से उतारेगे, तव

उस कोल्हू के बैल की तरह यही प्रतीत होगा कि आप वही के वही खडे हैं– चले बहुत, लेकिन ससार के कोल्हू के चारो ओर ही। आप दो कदम भी आगे नही बढे हैं। इसके विपरीत जीवन के महान् उद्देश्य से कुछ पीछे ही सरक गए है।

मनका समीक्षण अर्थात निर्मलता की ओर गति

यदि किसी को जीवन यात्रा की प्रगति का लेखा–जोखा रखना है तथा प्रगति की सही–सही व्याख्या जाननी है तो उसे समीक्षित मन के साथ अपने अन्त करण की निर्मलता पर दृष्टि डालनी होगी, जितनी अधिक निर्मलता होगी उतनी ही अधिक प्रगति कहलायेगी। अपनी प्रगति का सही लेखा–जोखा लेने के लिये अपने अन्त करण मे झॉकिये। उसका समीक्षण करिये, यह परीक्षा कीजिये कि मन आपके अपने नियत्रण मे है या नहीं? यदि है तो कितने अशो मे और नही है तो क्यो नही है? मन के घोडे पर आत्मा सवार है यदि नही है तो उसे किस प्रकार आरूढ बना सकते है?

ससार मे परिभ्रमण करते हुए अनादिकाल से मन की कुछ वृत्तियॉ विचित्र बन गई हैं। वे ही उसके स्थायी भाव के रूप मे बदल गई है। ये स्थायी भाव एक गोलाकार मे चल रहे है जो आहार, निद्रा, भय तथा ससार की दशा के भाव हैं। यह मन जन्म से साथ लगा है और जिस वातावरण मे यह चलता है उससे अपने अर्जित भाव भी ग्रहण करता है। यह मन इन्द्रियो के भिन्न–भिन्न विषयो मे घूमता है। जिसकी जेसी दृष्टि होती है, उसी रूप मे वह अपनी या किसी की प्रगति का हिसाब लगाता है। जैसे किसी की आर्थिक दृष्टि होती है तो वह अर्थ को दृष्टि मे रख–कर ही प्रगति की व्याख्या करता है। लेकिन ऐसा भटकाव मन के अस्थायी और अर्जित भावो के कारण होता हे। अगर आत्मा अपने भावो को प्रमुख बनाकर मन के अश्वपर नियत्रण कर ले और आरूढ हो जावे तो प्रगति की व्याख्या का लेखा–जोखा केवल आत्मा की उन्नति से ही निकाला जायेगा ओर ऐसा लेखा–जोखा ही प्रगति का यथार्थ लेखा–जोखा होगा,

आत्म–समीक्षण होगा।

वस्तुस्थिति का प्रतिपादन जब तक सही तरीके से नही होता है, तब तक किसी व्यक्ति मे सही लेखा–जोखा निकालने की क्षमता भी पैदा नही होती है। कपडा नापने के गज से क्या कोई किसी की मनुष्यता को नाप सकता है? सोना–चॉदी तोलने के कॉटे से कोई आत्मा का तोल निकाल सकता है? इस जीवन की प्रगति का लेखा–जोखा आध्यात्मिक मापदड से ही निकलेगा कि किसका अन्त करण कितना निर्मल है?

कवि आनन्घनजी ने प्रार्थना मे उस आध्यात्मिकता का मापदड बताया है–

"निज स्वरूप जे किरिया साधे,
तेह आध्यात्म लहिये रे।
जे किरिया करि चउ गति साधे,
तेन आध्यात्म कहिये रे।"

निज–आत्मिक स्वरूप को साधने वाली प्रत्येक क्रिया आध्यात्मिक क्रिया है और जिस क्रिया से ससार के चतुर्गति भ्रमण का काम होता हो, वह क्रिया कभी भी आध्यात्मिक नही है। चिन्तनशील व्यक्ति जब चिन्तन के क्षणो मे उतरते है और अपनी दृष्टि को सासारिक विषयो से ऊपर उठाते हैं, तब उन्हे आध्यात्मिक क्षेत्र की झलक मिलती है, जिसके आधार पर वे आध्यात्मिक क्रियाओ को पहिचान सकते है, उन्हे अपना सकते हैं तथा अपनी जीवन यात्रा मे अग्रगामी बन सकते है।

सच्ची प्रगति का आधार–अध्यात्म समीक्षण

आधुनिक युग मे भौतिकता एव आध्यात्मिकता के सवध मे आपको एक विचित्र अन्तर्विरोध दिखाई देगा। आज की दुनिया मे अमेरिका भोतिकता से सम्पन्न देश है, जिसकी तुलना मे हिन्दुस्तान

बहुत गरीब देश है। इस देश मे आध्यात्मिक सम्पन्नता सदा ही रही है। आज विचित्र दशा यह है कि भौतिक सम्पन्नता से दु खी होकर अमेरिका हिन्दुस्तान की तरफ देख रहा है कि इस स्रोत से उसको शान्ति मिले। लेकिन हिन्दुस्तान मे भौतिकता की भूख काम कर रही है और वह अमेरिका की तरफ देख रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि भौतिकता से मनुष्य की कभी तृप्ति नही होती है। आत्मा को शान्ति आध्यात्मिकता के क्षेत्र मे विचरण करने से ही मिलती है इसलिये उस क्षेत्र मे सम्पादित प्रगति को ही सच्ची प्रगति कहते हैं।

आध्यात्मिक क्षेत्र ही जीवन मे महान् उपलब्धियो का साधन होता है, इसलिये भौतिकता की वास्तविकता को जान लेने वालो की निगाहे इस आध्यात्मिक क्षेत्र की ओर ही मुडती है। लेकिन जिनकी निगाहे भौतिकता की ओर लगी हुई हो, वे आसानी से आध्यात्मिकता के महत्व को कैसे आत्मसात् कर सकते हैं ? वे तो इस मन के उद्दड घोडे पर बैठ कर कभी नरक कभी तिर्यच गति तो कभी निगोद योनि तक मे पहुँच जाते है। किन्तु इस मन को आत्मा के अधीन बनाना और चलाना– यह एक विकट प्रश्न को भी हल करना है।

मै सोचता हूँ और गहराई से समीक्षण करता हूँ तो लगता है कि भविष्य मे अगर दुनिया हिसाकारी व विनाशक शस्त्रो का निर्माण और दुरुपयोग नही करे और विज्ञान को लोक–कल्याण के साथ जोड दे तो यह भौतिकता स्वय भी आध्यात्मिकता की ओर मुख कर लेगी। इस प्रकार का जन–मानस बनाने का कर्तव्य है धार्मिक क्षेत्र मे कार्य कर रहे लोगो का कि वे उस प्रकार का प्रचार करे तथा दुनिया को आध्यात्मिकता का महत्व समझावे। वैसी खुराक तैयार करे। वह खुराक अगर दुनिया को मिलेगी तो दुनिया निश्चित ही आध्यात्मिकता की ओर कदम बढाएगी।

आध्यात्मिक क्षेत्र मे जिनकी गति है, वे आत्म सकल्प के आधार पर चलते है, जिसके साथ आत्म–विश्वास और आत्म पुरूषार्थ जुडा

हुआ होता है। योग का सहयोग तो उनको मिलता है लेकिन आध्यात्मिक प्रगति साधने वाले योग पर ही आधारित नही रहते। नदी का प्रवाह जिस ओर बह रहा है, उस प्रवाह मे तो कोई भी तैर कर दूर तक जा सकता है लेकिन विशेषता उसकी होती है जो प्रवाह के विपरीत दिशा मे तैर कर अपनी आत्म–शक्ति का परिचय दे। जो प्रवाह का सामना करता है, वह दुनिया की निन्दा–सराहना की परवाह नही करता है, और सत्य तत्त्व का अनुसरण नही छोडता है। लोग चाहे उसको पुराणपथी ही क्यो न कहे? किन्तु यह जो गति है, वही सच्ची प्रगति है।

अन्धानुकरण नहीं - सिद्धान्तों का समीक्षण

इस ससार मे विषय कषायो का प्रवाह भी नदी की धारा की तरह बह रहा है। जो इस प्रवाह के साथ बहता है, वह भौतिकता का अन्धानुकरण करता है लेकिन जो इस प्रवाह के विरूद्ध तैरता है, वही वास्तविक प्रगति को साध लेता है। लेकिन आज के युग मे धार्मिक क्षेत्र मे भी प्रगतिशीलता की नई–नई व्याख्याए लोग करने लगे हैं। वे कहते है कि – "युग प्रगतिशील है– इसमे साधु भी वाहन से यात्रा करे, ध्वनि विस्तारक यत्र काम मे ले, गद्दी, कुर्सी पर बैठे और बहिनो से हाथ मिलावे तो क्या आपत्ति है? इन बातो का उनके अनुसार वे ही विरोध करते है जो पुराणपथी है। इस प्रकार का कथन भ्रान्ति–मूलक है, क्योकि जो धारा के सम्मुख मुडा था, वह उस धारा के प्रवाह को सहन नही कर पाया तो तरकीब से विषयो की ओर लुढकने लगा और धारा मे सम्मुख तैरने वालो को पुराणपथी कहने लगा एव अपने को प्रगतिशील। यदि इन्द्रियो के विषयो मे लिपटने, योग के साधन जुटाने तथा साधुता को छल कपट से रगने मे ही प्रगतिशीलता हे तो वेसी प्रगतिशीलता वास्तव मे प्रतिगामिता है अथवा पतन का मार्ग हे।

अपने सिद्धान्तो पर दृढ रहकर आध्यात्मिक व आत्म–साधना से आगे वढने का नाम प्रगतिशीलता है, वरना किसी भी वात के आखे

मूद कर मान लेने को प्रतिगामिता ही कहेगे। भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध समकालीन थे। बुद्ध के अनुयायी विभक्त होकर प्रतिगामी मार्ग पर बढ गये और अधिकाश उसमे बह गये। लेकिन भगवान् महावीर के अनुयायी आध्यात्मिकता के क्षेत्र को व्यापक बनाने की बात ही सोचते रहे। प्रगतिशील वही है जो आध्यात्मिक क्षेत्र मे आगे से आगे जाना चाहता है, लेकिन इसके लिए आवश्यक है सिद्धान्त, सद्व्यहार, सुन्दर रीति व स्वस्थ गति। परन्तु लोग आज विपरीत प्रगतिशीलता की ओर मुड रहे है। भगवान महावीर के युग मे भी गौशालक और जामालि थे जो भगवान् द्वारा बताये हुए मार्ग के विपरीत चलते थे, तथा अपने को प्रगतिशील मानते थे। आज के प्रगतिशील तर्क देने वालो को मै पूछता हूँ कि भगवान् महावीर ने जामालि से यह क्यो नही कहा कि तुम्हारे और मेरे कहने मे जो फर्क है, मे कुछ पीछे सरकू तथा तुम कुछ आगे आओ ताकि अपने समझौता करले? ऐसा नही करने पर भगवान् को सकुचित विचारो वाले या प्रतिगामी कह सकेगे क्या? यह सोचने की बात है कि वास्तव मे प्रगतिशीलता क्या होती है और प्रतिगामिता क्या होती है ?

श्रमण भगवान महावीर स्वामी द्वारा निर्देशित मार्ग तो प्रगतिशीलता का ही है। जो उनका सम्यक् अनुसरण करता है वही प्रगतिगामी बन सकता है। जो निर्देशित मूल यम–नियमो को भग करते है, वे प्रगतिगामी हैं।

मेरे भाई बहिन आधुनिक हवा मे इतने ऊँचे उड रहे हैं कि जैसे पतग उडता है। पतग की भी डोर हाथ मे हो तव तो कोई बात नही, लेकिन डोर हाथ से छूट जाय तब क्या हाल होगा ? यह जो डोर है, वह सिद्धान्तवादिता की डोर होनी चाहिये और जब यह डोर हाथ मे हो तव पतग कहीं भी केसी भी उडान करे तो आत्म–पतन का खतरा नही रहेगा । शायद यह कुछ लोगो को पसन्द नहीं आयेगा कि मै किस युग की वात कर रहा हूँ। आप तटस्थ भाव से सोचेगे तो ज्ञात हो जायगा कि मै किस युग की वात कर रहा हूँ और

महावीर किस युग की बात कर रहे थे ? मै उनका उदाहरण इसीलिये प्रस्तुत करता हूँ कि आपको सोचने का सम्बल मिले। अपने को विशाल और व्यापक बनाइये, लेकिन सिद्धान्तवादी प्रगतिशीलता के साथ। ऑखो पर पट्टी बॉधकर किसी बात का पालन न करे। क्योकि वह, प्रतिगामिता होती है—अन्धा अन्ध पुलाय।

प्रगतिशीलता का आधार-सैद्धान्तिक समीक्षण

इस विश्लेषण से आप समझ गये होगे कि जीवन की यात्रा मे –आध्यात्मिक क्षेत्र की यात्रा मे गतिशील कौन होता है ? मैं स्पष्ट रूप से कहता हूँ कि सिद्धान्तो का जो धरातल नियत का लिया गया उस पर दृढतापूर्वक चलना चाहिये । दोहरे व्यवहार से दुनिया को धोखा देने की प्रवृत्ति नही रहनी चाहिये। जब कभी समीक्षण के सप्रेक्ष्य मे मन के घोडे को ठीक तरह से नियत्रित करके आगे बढने मे शक्ति लगायेगे तो फिर अधे नही रहेगे। तब जीवन की यात्रा मे एक सुव्यवस्थित मोड आ जायेगा। फिर समीक्षण की व्यवस्थित गति के साथ आप आगे–से–आगे प्रगति करते हुए चल सकेगे।

प्रगतिशील समझे किसको ? कोई कदम उठाने से पहले अपने अन्त करण का ठीक तरह से समीक्षण करे, अपने मन की भलीभॉति जाच परख करे । जब यह स्थिति आ जायेगी–यह कला हृदय मे उतर जायेगी तो मन के घोडे पर सवारी भी हो जायगी और घोडे की गति भी नियत्रित हो जायगी । जीवन की यात्रा मे इस प्रकार की प्रगतिशीलता के साथ जब आत्मा अपनी ही आन्तरिकता मे गति करेगी, उसका समीक्षण करेगी तभी वह अपने चरम विकास तक पहॅुच सकेगी । वहॉ तक पहॅुचने के लिये हम अपनी स्थिति साधु जीवन को लेकर चल रहे हैं, आप भी आगे बढे और सन्त जीवन को आगे बढावे । ▢▢

5. समीक्षण बनाम अन्तर्दर्शन

समीक्षण ध्यान की साधना भीतर के दर्शन की साधना है । किन्तु इसका परिणाम उभयमुखी होता है । यह जीवन के भीतरी व बाहरी दोनो तटो का स्पर्श कर आनन्द से भर देती है । नदी अपने दोनो तटो को हरा भरा करती हुई चलती है। दोनो तटो की शोभा बढाती हुई ही वह समुद्र की ओर निरतर आगे बढती है। वैसे ही इस जीवन मे यदि समीक्षण–साधना का समुचित रूप से विकास हो जाय तो वह साधना–शक्ति भी नदी की ही तरह जीवन के दोनो तटो को हरा भरा कर शोभायमान करती हुई वीतरागता के समुद्र मे समाहित हो जायगी। ये दोनो तट बाहरी और भीतरी जीवन के रूप मे अथवा इहलोक एव परलोक के रूप मे माने जा सकते है।

किन्तु इस साधना का विकास कैसे होगा ? क्योकि यह चेतना शक्ति इसी आत्मा की शक्ति है जो सासारिकता मे तीव्र होने से आध्यात्मिक मार्ग की ओर निद्रालीन है। आध्यात्मिक दृष्टि से उसकी जागृति हो, तभी उसका उसके अनुसार विकास सम्पादित किया जा सकता है। ऐसे विकास के लिए समीक्षण साधना किंवा अन्तर्दर्शन के अभ्यास की आवश्यकता होती है। कारण, अन्तर्दर्शन होगा तभी अन्तश्चेतना के स्वरूप की समीक्षा हो सकेगी एव उस स्वरूप की जागृति अन्तरिक दर्शन के परिपुष्ट अभ्यास से ही सम्पन्न होगी।

समस्याओं का घेरा : आत्म–विस्मृति

आज के मानव के समक्ष इस लोक की समस्याएँ विशेष रूप से मुँह बाये खडी रहती हैं। मनुष्य यह चाहता है कि मेरा यह दृश्य जीवन, जिसमे मै जी रहा हूँ, जिस परिवार मे मै रह रहा हूँ, जिस समाज के बीच मैं चल रहा हूँ और जिस राष्ट्र के साथ मेरा सम्बन्ध है, मै उन सभी स्थानो मे सर्वोपरि प्रतिष्ठित रहूँ। मेरी पहुँच सभी स्थानो पर हो। मैं इन कार्यो को करता हुआ कभी भी किसी के प्रभाव मे न रहूँ और सभी क्षेत्र मे मेरी प्रशसा हो।

यह प्रशसा, प्रतिष्ठा तथा यश की भावना मानव के मन मे उत्पन्न होनी स्वाभाविक है। चाहे वह साध्य रूप मे हो अथवा साध्य रूप में न हो, शुद्ध साध्य के साथ भी इस प्रकार की भावना शुद्ध साध्य के लक्ष्य मे कभी न कभी अवरोधक बनकर साध्य का रूप ग्रहण कर सकती है। अतएव समीक्षण–दर्शी साधक को ऐसी भावना भी मन मे उत्पन्न या जागृत नही होने देनी चाहिये। कदाचित उसकी स्फुरणा बनती हो तो तत्काल उसका समीक्षण करके उसे शमित कर देना चाहिए।

साधक का एकमात्र शुद्ध उद्देश्य ही उसके सम्मुख रहना चाहिए। उसी उद्देश्य की पूर्ति दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य से करते रहने का समीक्षण चालू रहे। ऐसे साधक की अनिच्छा रहने पर भी पूर्वोक्त यश, कीर्ति स्वय साधक के पीछे भागती रहेगी। किन्तु साधक उसको अपने लिए उपादेय के रूप मे ग्रहण नही करके अनुकूल प्रतिबन्धक के रूप मे ही समझता रहे तो उस साधक के जीवन मे शुद्ध लक्ष्य की धूमिलता नही होगी, वह सदा सर्वदा प्रगतिशीलता के साथ लगातार अपने चरण आगे बढाता ही रहेगा। उसके जीवन मे वास्तविक सेवा सहयोग और सत्कार्य बनते रहेगे।

किन्तु यह भावना भी धन और वैभव प्राप्त करने के उद्देश्य जैसी लुभावनी होती है। किसी भी तरह प्रशसा, प्रतिष्ठा और कीर्ति प्राप्त हो, इसके लिए वह जैसी अनीति का आचरण धन कमाने के क्षेत्र मे करता है। वैसे ही अनीति का आचरण इस क्षेत्र मे भी करना आरम्भ कर देता है। कीर्ति का बाहरी आवरण इस रूप मे खडा कर दिया जाता है, जैसे कि वह स्वय एक महान पुरूष है, किन्तु कोई विवेकशील व्यक्ति उस 'महान पुरूष' के आवरण के भीतर झॉक कर देखे तो उसके जीवन का खोखलापन साफ दिखाई दे जाता है।

इस तरह जो व्यक्ति अनीति पर आधारित चालाकी का जीवन जीते हें, वे सामान्य रूप से शान्ति–प्रिय समाज मे विविध प्रकार से समस्याऍ उत्पन्न कर देते हैं। अपार धन व यश प्राप्त करने के क्षेत्रो

मे ऐसी फर्जी कार्यवाहियो से सामान्य जन के लिये कई तरह की समस्याएँ पैदा हो जाती हैं, वे ही इह लोक की लौकिक समस्याएँ है। इन लौकिक समस्याओ से आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी कई कठिनाइयाँ सामने आती हैं और उनका हल निकाले बिना आत्मोन्नति का मार्ग निष्कटक नही बनता है।

प्रारभ मे तो मनुष्य धन–यश अर्जित करने के क्षेत्रो मे नीति के अनुसार प्रयत्न और पुरूषार्थ करता है, किन्तु ऐसा करने पर भी दुनिया की आपाधापी मे जब उसको इच्छानुसार फल नही मिलता है, तो वह भी उस आपाधापी मे शामिल हो जाना चाहता है तथा नीति को छोडकर अनीति के मार्ग पर चल पडता है। नीति पर चलते हुए वह अनुभव करता है कि उसके जैसे लोगो की सख्या और उनका प्रभाव बहुत कम है और इसी कारण वह अपने या अपने परिवार–जनो के अभावो को पूरा नही कर पाता है। कभी–कभी तो परिवार के सदस्य भी उसका निरादर करने लगते हैं–समाज और राष्ट्र मे आदर पाना तो दूर की बात होती है। वह देखता है कि जो लोग सम्पन्न हैं सभी जगह वे ही आदर पाते है और उन्ही की कीर्ति मे ज्यादातर चार चॉद लगते हैं। इस ओर कोई ध्यान नही देता है कि यह सम्पन्नता उन्होने कितनी अनैतिकता से प्राप्त की है।

नीति पर चलते हुए उसको चारो ओर निराशा ही निराशा दिखाई देती है। सुख के बजाय पग–पग पर दुर्भाग्य सामने खडा दिखाई देता है। अनेक प्रकार की कठिनाईया उसको घेर लेती हैं, तब उसके जीवन मे रिक्तता प्रवेश करने लगती है। जो पृष्ठ–भूमि मे आध्यात्मिक अनुभव होता है, उससे उसका जीवन रिक्त बन जाता है। जीवन की उस रिक्तता मे वह भी पागलो की दौड मे शामिल हो जाता है और अनीति की कालिमा से अपने जीवन को रँगता हुआ आतरिक सुख को भूल जाता है। जीवन की ऐसी रिक्तता अत्यन्त भयावह होती है।

समीक्षण का दिग्बोध

जीवन की भयावह रिक्तता मे जब कभी समीक्षण का चितन

उपस्थित हो जाता है तो भावना की अनुकूलता के साथ मनुष्य अपने जीवन की दुर्दशा का समीक्षण करने लगता है। वह कुछ गहरा उतर कर आत्म–समीक्षण करता है कि जीवन की ऐसी दुर्दशा क्यो हो रही है? जैसा कि मुझे महसूस होता है, दुर्भागी हूँ तो क्या, यह मनुष्य जीवन दुर्भाग्य से मिलता है? यदि ऐसा नही तो मै दुर्भागी कैसे ? सद्भागी ही हूँ, किन्तु शायद मैं अपने सद्भाग्य को ठीक से नहीं समझ पा रहा हूँ। इस मनुष्य जीवन मे तभी आत्मिक शक्तिया विकसित होने को आतुर है–मै ही दुर्दशाग्रस्त बन कर उन्हे नहीं समझ पा रहा हूँ । मैं अपने भीतर केवल अभाव ही अभाव देख रहा हूँ, रिक्तता महसूस कर रहा हूँ और जीवन का सही सूत्र पकड नहीं पा रहा हूँ, किन्तु वह सूत्र मुझे पकडना होगा ।

ऐसी चितन–धारा प्रवाहित होती है तो कभी–कभी उसमे भावनाओ की बाढ भी आ जाती है, उस भाव प्रवाह मे जीवन का बहुत सारा कचरा बह जाता है।

आगम ग्रथो मे उल्लिखित अनेक महापुरूषो के जीवन हमारे सामने है, जो प्रशस्त भावनाओ की ऐसी उच्चतम कोटि मे इतने जल्दी पहुँच गये कि चद क्षणो मे ही उनके जीवन की समूची उज्ज्वलता निखर उठी। जागृति के सुनहरे क्षण ऐसे ही होते है। फिर पूर्ण चिन्तन धारा से जीवन के दोनो तट हरीतिमामय बनते है तो शोभादायक भी बन जाते है। ये दोनो तट बाहरी और भीतरी जीवन के होते हैं, जो इस प्रकार की चिन्तन धारा से सजल और सरस बन जाते हैं। यह जीवन सरस बनता है तो परलोक स्वय ही सरस बन जाता है।

कई बार जागृति के ऐसे सुनहरे क्षण स्वय के समीक्षण द्वारा स्वय का विवेक जागृत कर दे तो स्वय भी उपस्थित हो सकते हैं, किन्तु यह विरल होता हे। अधिकतर सुनहरे क्षण सत समागम से ही उपस्थित होते हैं। जब मनुष्य सन्तो के समीप पहुँचता है, प्रभु की प्रार्थना तथा भगवान की वाणी का श्रवण करता है, उस वाणी मे

उसको रस आने लगता है। मन आनन्दित होता है तो वह ज्ञान चर्चा भी करता है– तथा अन्तर्दर्शन की तरफ भी प्रेरित होता है। सन्त समागम जितना प्रभावशाली होता है, उसके अनुसार ही वह अपनी भावनाओ को शुभ्रता मे ले जाता है तथा आत्मोत्थान के लिए पुरूषार्थ करने का सकल्प बना लेता है। यह मोड उसके जीवन का सुखद मोड हो जाता है और वह धीरे–धीरे ही सही, अपने जीवन को स्वस्थ बना लेता है। एक बार जीवन मे जो जागृति के क्षण आते हैं उनकी यदि सुरक्षा कर ली जाती है तथा जीवन व्यवहारो मे उनके अनुसार परिवर्तन आ जाता है तो वे क्षण स्थायी बन जाते है। उनके स्थायित्व का अर्थ होता है आत्मा का सतत समीक्षण, और वही समीक्षण परिपूर्ण शुद्धि का कारण बन जाता है।

निष्काम समीक्षण

श्री मदानन्दधन जी ने प्रार्थना मे सकेत दिया है कि तू सुपार्श्वनाथ भगवान का वन्दन कर। आज के युग के व्यक्ति किसी भी कार्य का प्रयोजन पहले जान लेना चाहते है। और यह उचित भी है। इसलिए उन्होने प्रयोजन बतलाने की दृष्टि से पहली कडी मे ही सकेत दे दिया है कि मैं जो वन्दन कर रहा हूँ, वह बिना प्रयोजन के नहीं है। इसके लिए कहा गया कि –

श्री सुपार्श्व जिन वदिए,
सुख सम्पत्ति नो हेतु   ललना   ।
शान्त सुधारस जलनिधि,
भवसागर मा सेतु   ललना   ।

इसमे कहा है कि तू परमात्मा का वन्दन कर। वन्दन करने से तुझे फल मिलेगा। कहा जाता है कि साधक को फल की कामना नही करनी चाहिए, लेकिन फल की कामना किस रूप मे नही करनी चाहिए– यह समझने का विषय है। कुछ मागने या याचना के रूप मे फल की कामना नहीं करनी चाहिए। इसके अन्तर को समझ लीजिए।

एक व्यक्ति धर्म करनी का मूल्याकन करता है, लेकिन उसमे मूल्य की कामना नही करता है। धर्म करनी का मूल्याकन करने वाला जब वन्दन करने की स्थिति मे आता है तो सोचता है कि मेरी धर्म करनी का फल हो तो मुझे अमुक वैभव मिले, सन्तान मिले या अन्य प्राप्ति हो। ऐसी फल कामना उस धर्म करनी को बेचने के समान होती है। ऐसी फल कामना बधनकारी होती है क्योकि उसके द्वारा अमूल्य वस्तु को तुच्छ मूल्य के साथ बेच दिया जाता है। एक चिन्तामणि रत्न किसी व्यक्ति को मिल जाता है। वह उसकी कीमत नही समझता है और जोहरी के पास चला जाता है कि जितनी कीमत वह अपनी इमानदारी से उचित समझे वह उसको दे दे। तब तो जोहरी कुछ सोचने पर बाध्य होगा, लेकिन वह अगर यह कहे कि मुझे दस रूपये दे दो और यह टुकडा ले लो, तो जोहरी सोचने पर भी बाध्य नही होगा और दस रूपये मे चिन्तामणि रत्न खरीद लेगा। इसमे दोष खरीदने वाले का नही, बेचने वाले का है। इसी रूप मे धर्म करनी वाले भाई-बहिन यह भाव रख सकते हैं कि उसका उन्हे फल मिलेगा, लेकिन दस रूपये मे चिन्तामणि रत्न बेचने की तरह धर्म करनी को बेचने के लिए वे कीमत नही लगावे। वे फल की यही भावना रखे कि उनकी आत्मा शुद्ध होगी, बाकी जो मिलगा, वह अपार मिलगा। लेकिन मागने का चाव या याचना नही होनी चाहिये।

परमात्मा की प्रार्थना का जो प्रयोजन बताया गया है वह यही है कि इसमे सुख और सम्पत्ति मिलेगी, लेकिन वह लौकिक नहीं, अलौकिक होगी, जिसकी सहायता से भवसागर मे पुल बन जायेगा याने कि परमात्म-स्वरूप की दिशा मे प्रमाण हो जायेगा एव शान्ति का अमृत पीने को मिलेगा । प्रार्थना का प्रयोजन कभी लौकिक इच्छाए नही होनी चाहिए।

धर्म करनी का फल : आत्म समीक्षण

धर्म के क्रियाकलाप के फल को भी यदि जानना चाहे तो उसको ध्यान मे रखले। जो परमात्मा को नमस्कार किया जाता है- वह व्यर्थ मे जाने वाला नहीं हे। यह नमस्कार सुख-सम्पत्ति का हेतु

है। सुख–सम्पत्ति का हेतु क्यो है। इसे कुछ गहराई से समझना होगा। जब भी आप परमात्मा को, गुणी जनो को, सन्त–पुरूषो आदि को नमस्कार करने की स्थिति मे होगे और सही भाव से नमस्कार कर रहे होगे तो उस समय बुद्धि मे निर्मलता आये बिना नही रहेगी। कारण, उस समय तुरन्त यह तुलना सामने आएगी कि जिनको नमस्कार किया जा रहा है, वे किस धरातल पर खडे हैं और मै नमस्कार करने वाला किस धरातल पर खडा हूँ? उस तुलना मे प्रेरणा जागृत होगी। तब आत्मा की अशुद्धता और कर्म–जन्य मलीनता को धोने का सकल्प पैदा होगा। सतो के दर्शन के समय शुभ भावो का प्रवाह चलेगा और तब पापपूर्ण भाव रूक जायेगे। मन पाप से रूकेगा तो सद्‌गुणो मे रमेगा। क्योकि मन गति तो करता ही है। अगर उसको पाप की ओर जाने से रोक लेगे तो उसकी गति धर्म की ओर ही बढेगी। वह अन्तर समीक्षण या आत्म–दर्शन मे प्रवृत होगा।

आप अन्तर्दर्शन करने का अभ्यास कीजिए, आत्म–समीक्षण कीजिए फिर आपको विदित होगा कि कितने बुरे विचार अपने अन्दर रात–दिन आते रहते है तथा उनके दबाव से मन किस रूप मे धर्म कार्यों से विमुख बना रहता है? पहले तो अन्दर देखने पर प्रकाश ही नही दिखाई देगा, क्योकि वहॉ अन्धकार भरा हुआ है, लेकिन ज्यो ज्यो समीक्षण का अभ्यास पुष्ट बनेगा और आप समीक्षण की गहराई मे उतरेगे त्यो त्यो आप वहॉ की स्थिति को देखकर विचलित हो जायेगे कि मेरी जिन्दगी बुरे विचारो से ही भरी हुई है? उस स्थिति मे सुधार लाने के लिये ज्ञानी जनो ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपाय बताया है– वन्दन का, नमस्कार का। यह उपाय केवल ज्ञानियो द्वारा निर्देशित हुआ है। वन्दन प्रभु के लिये बताया है परन्तु उसके साथ–साथ सारी प्रक्रिया का निर्देशन हे। यदि उस परम्परा से आप चलते हैं तो सद्‌विचारो को बनाने के लिए कई कार्यक्रम हो सकते हैं और इन प्रसगो से जीवन गतिमान होता रहे तो सहज ही विचारो का प्रवाह पवित्र बनता हुआ चला जाता है। धार्मिक क्रियाकलापो का फल स्वत ही प्राप्त हुआ चला जाता है, सिर्फ बात अपनी आत्मा के समीक्षण की है– आत्मदर्शन करते रहने की है।

आप सोचेगे कि प्रात काल मनुष्य अपने घर के कार्यो मे ही व्यस्त रहता है, लेकिन जब उसके ध्यान मे आता है कि प्रार्थना के कार्यक्रम का समय हो गया है तो वह सारे कार्यो को छोडकर प्रार्थना मे सम्मिलित होने के लिये चल पडेगा और अपने बाल बच्चो और परिवार जनो को भी साथ मे ले जायेगा। तो इस रूप मे घर रहते हुए भी शुद्ध भावना आई या नही? प्रार्थना का ध्यान आते ही जाने की उमग आई— शब्द गुण की दृष्टि से वह पल्लवित हुआ। घर वाले को चलने के लिए कहा तो धर्म दलाली हुई। धर्म स्थान पर जाकर प्रार्थना मे तल्लीन बना और सन्तो के दर्शन करके मंगल पाठ सुना तो कम से कम उतने समय तक के लिये तो बुरे विचारो का आवेग रूक रहा तथा सद्‌गुणो को अपनाने की प्रेरणा मिली। फिर व्याख्यान का कार्यक्रम होता है तो घर के कार्यो को जल्दी निपटाकर पुन पहुँचने की जल्दी रहती है— शास्त्र श्रवण करने की आकाक्षा बनती है व्याख्यान मे सामायिक की तो सवर की साधना मे प्रवृति होती है- पाप का त्याग होता है । सद्‌विचारो मे ध्यान रमता है तो दोपहर की चौपी मे साय काल प्रतिक्रमण मे तथा प्रश्नोत्तरी मे नियमित रूप से पहुचने की उत्सुकता रहती है और इन सभी कार्यक्रमो मे नियमित रूप से भाग लेने के कारण अपनी विचारधारा मे शुद्धता और सद्‌गुणो का प्रवाह स्थायी रूप से बल पकडने लगता है।

इसे आप धर्म करनी का ही फल मानिये कि जीवन मे सद्‌गुणों की वृद्धि होती है, परिणामो की शुद्धता धीरे–धीरे अखण्ड बनती है तब अन्तर्दर्शन का अभ्यास या आत्म–समीक्षण स्थायी पवित्रता मे परिवर्तित होता जाता है।

मन की चक्की रिक्त न रहे

आत्म–समीक्षण की वृत्ति तथा उसका अभ्यास जितना सजग और परिपुष्ट बनता है, उतना ही जीवन मे सर्वतोमुखी पवित्रता का त्वरित विकास होता है। मन की वृत्तियॉ निर्मल होती हैं तो बुद्धि मे भी सदाशयता का प्रवेश होता है एव बुद्धि व मन की सहायता से जीवन की समस्त प्रवृत्तियॉ स्व तथा पर के कल्याण मे नियोजित हो

जाती है। इस रूप मे अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होता है तथा अन्य कर्म भी टूटते जाते है। निर्मल बुद्धि और मन की अवस्था से गृहस्थाश्रम की प्रवृत्तियॉ भी निर्मल बन जाती है। तब बाहरी और भीतरी जीवन मे सुख और सम्पत्ति की साधना सुदृढ हो जाती है। एक वन्दन से होने वाली शुभ स्थिति के बारे मे यह तो पहली उपलब्धि है। कवि ने इस वदन के साथ जिस सुख–सम्पत्ति की प्राप्ति का सकेत किया है, उसको आप गभीरता से समझने का यत्न करे।

एक बहिन अपने मामाजी के यहॉ पहुँची, उसने मामाजी के यहॉ हाथ–चक्की चलती हुई देखी। उसके घर पीहर का ऐसा वातावरण था कि वहॉ हाथ चक्की से काम नही लिया जाता था। आप जानते हैं कि हाथ–चक्की से पिसे आटे के उपयोग से मन और शरीर के स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव पडता है। लेकिन उस बहिन ने सोचा कि मामाजी के यहॉ पैसो की तगी दिखती है, जिस कारण यहॉ हाथ–चक्की काम मे ली जाती है। उसने मामाजी से पूछा कि वे आटा कल–चक्की मे क्यो नही पिसवाते है? मामाजी ने समझाया कि हाथ–चक्की चलाने के कई गुण है। श्रम करने से सच्चे सुख की साधना होती है। प्रात काल हाथ–चक्की चलाने से शरीर का सुन्दर व्यायाम हो जाता है, शरीर तथा साथ ही मन मे स्फूर्ति का सचार होता है। उस स्फूर्ति से बुद्धि निर्मल बनती है। हाथ के पिसे आटे मे गेहूँ के पोषक तत्व नष्ट नही होते है, जिनके कारण शरीर का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। कल–चक्की के आटे मे अनाज के पोषक तत्व ही नष्ट नहीं होते, जीवन के पवित्र तत्व भी नष्ट हो जाते हैं। मैं भी चक्की चलाता हूँ– जब हाथ–चक्की चलाने मे इतने गुण है तो पुरूष उसमे पीछे क्यो रहे? तुम समझती होगी कि पैसे बचाने के लिये हाथ–चक्की का प्रयोग होता है तो ऐसी बात नहीं है। इस प्रयोग के लाभ बहुत ज्यादा है। तुम भी यह प्रयोग करोगी तो आनन्द आ जायेगा। तव उस बहिन ने भी हाथ–चक्की का प्रयोग शुरू कर दिया। लेकिन अन्तर यह पड गया कि वह चक्की तो चला रही थी। पर दाने नही डाल रही थी। मामाजी की नजर उस तरफ गई तो उन्होने टोका कि बिना दाने डाले खाली चक्की क्यो चला रही हो?

दाने डालने पर चक्की उसको भारी लगी। तब मामाजी ने एक सन्त का उपदेश सुनाया कि खाली चक्की चलाने से पाट घिसते हैं, आग पैदा हो जाती है तो नुकसान हो जाता है। उसी तरह मन की चक्की चलती है। अगर उसको खाली चलाते हैं तो मन की शक्ति का अपव्यय होता है। इसलिये उसमे सन्तो के उपदेश और सद्‌गुणो के दाने डालते रहना चाहिये ताकि उनका मथन होता रहे। मन की चक्की मे जब उनका सार निकल जाता है तो वे जीवन मे रच बस जाते है।

यह मन की चक्की मे जो पीसना है, वही समीक्षण या अन्तर्दर्शन का अभ्यास है और जीवन के स्वास्थ्य के प्रति सजगता का लक्षण है। इस प्रयोग से जीवन की समस्त वृत्तियो तथा प्रवृत्तियो मे पवित्रता व्याप्त हो जाती है।

समीक्षण अर्थात् अन्तर्दर्शन

मेरे कथन का तात्पर्य यही है कि हाथ–चक्की चलाने से जिस रूप मे घर की सुन्दर सेवा बन पडती है, उसी रूप मे मन की चक्की मे सद्‌विचारो और सद्‌गुणो के दाने पडते रहे तो अन्तर्दर्शन का अभ्यास पक्का हो जाता है और जीवन को सद्‌गुणी बनाने की चेष्टा सफल बनती है। मेरे भाई–बहिन भी यहाँ अच्छी बाते सुनकर उन्हे चिन्तन–मनन की दृष्टि से अपने मन की चक्की मे पीसे। जो घर के सदस्य यहाँ नही आ पाये हैं, उनको वे अच्छी बाते सुनाये तथा अपना चिन्तन भी उन्हे देवे। चिन्तन की प्रक्रिया से कई गुना ज्ञान बढता है तथा जीवन मे सद्‌गुण ही सद्‌गुण पल्लवित एव पुष्पित होते हैं।

अन्तर्दर्शन के साथ समीक्षण ध्यान की साधना भी पूर्ण होती है। आप प्रवचन सुनते हैं, किन्तु प्रवचन स्थल से जाने के बाद जो कुछ सुना हो, उसको वापिस ध्यान मे लावे और दूसरो को कहने का अभ्यास करे। प्रवचन ध्यान से सुनेगे तभी वह विशेष स्मृति मे रहेगा। एक दिन ध्यान से सुनेगे तो दूसरे दिन और अधिक ध्यान से सुनने की प्रवृत्ति बनेगी और इस प्रवृत्ति का प्रतिदिन विकास होता रहेगा तो

ध्यान मे एकाग्रता तथा एकनिष्ठा बनने लगेगी। जितने समय तक यहॉ सुने उतने समय तक स्वय के विचारो को गौण करके जो बाते कही जाती है उन पर पूरा ध्यान लगावे। ध्यान से सुनी उन बातो का प्रयोगात्मक निष्कर्ष निकाले। कठिनाई आवे तो प्रश्न पूछकर हल करे। इस प्रक्रिया से धीरे–धीरे आप दुर्गुणो से ऊपर उठकर आन्तरिक ताप को मिटाने का प्रयत्न करे। समीक्षण की प्रक्रिया से यदि अन्तर ताप को मिटा दिया तो इहलोक और परलोक दोनो मे सुख–शान्ति का अनुभव करेगे।

यहॉ मैंने सुख–सम्पत्ति के एक अर्थ को लिया है, समग्र अर्थ को नहीं। आप इस अर्थ पर चिन्तन करे और समीक्षण अन्तर्दर्शन के अभ्यास की दृष्टि से आगे बढने मे प्रवृत्त हो। अन्तर्दर्शन तभी होता है जब अपना लक्ष्य आत्माभिमुखी बनता है। आत्मा को सचालक तत्त्व मानकर चलने से आन्तरिक प्रेरणा उद्भूत होती है। तब मनुष्य अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति मे अन्त करण की आवाज को सुनता है और उसका अनुसरण करते हुए अपने आत्मोत्थान के मार्ग को बाधारहित बना लेता है।

आत्मा की सतत् जागृति हेतु समीक्षण ध्यान साधना ऐसी ज्ञानपूर्ण प्रक्रिया है जिससे जीवन की अशुद्धि धुल जाती है, नई अशुद्धि प्रवेश नहीं करती तथा पवित्र सुख–सम्पत्ति स्थायी रूप से उपलब्ध हो जाती है। अस्तु। □□

6. समीक्षण : बाहर और भीतर का समीकरण

हमारी आत्मा अनादि काल से ऐसे द्वैत भाव मे उलझी हुई है कि इसका समीकरण दो भागो मे विभक्त हो गया है। एक वक्त जब आत्मा किसी उलझन मे फॅस जाती है तो उस उलझन से उसका छुटकारा पाना बडा कठिन होता है। आत्मा को पुन श्रेय मार्ग पर गति बनाने के लिए उसके अनुसार यत्न करना परमावश्यक होता है। किसी शिला के नीचे किसी का हाथ आ जाता है तो उस शिला के नीचे से अपने हाथ को वापिस बाहर निकालने के लिए काफी श्रम, साहस और बुद्धि से कार्य करना होता है, जो आसान नही होता है। सारा बल लगाकर झटके से हाथ को बाहर निकालने की कोशिश की जाती है तो अगुलियो के टूट जाने का खतरा रहता है और अन्य प्रकार की हानि भी हो सकती है, इसके लिये पूरी सावधानी जरूरी होती है। उस समय श्रम, साहस और बुद्धि की परीक्षा होती है कि हाथ को किसी भी तरह की हानि पहुँचाये बिना वह सहज रूप मे शिला के नीचे से निकल जावे। उस समय भीतर और बाहर की एक–रूपता की जरूरत होती है। मनोयोग भी उस तरफ तटस्थ भाव से सतर्कता पूर्वक लगा हुआ हो और शरीर के सचालन मे भी पूरी सावधानी हो। इस एकरूपता के आधार को ही हम समीक्षण ध्यान की सज्ञा प्रदान करते हैं।

यह तो एक छोटी–सी बात है। जब अपनी आत्मा को किसी उलझन मे से निकालने की समस्या सामने हो तब अनुमान लगाया जा सकता हे कि कितने अथक् श्रम, अटूट साहस तथा कर्मठ बुद्धि की आवश्यकता होगी। उसके लिए तो बाहर और भीतर की घनिष्ठ एक–रूपता चाहिए। ऐसी एकरूपता कि मन, वचन तथा काया के सम्पूर्ण योग एक जूट बन जावे। समीक्षण की साधना गहनतम बन जावे।

कर्मो की शिला के नीचे आत्ममुक्ति का उपाय समीक्षण

यह आत्मा बहुत समय से शिला के समतुल्य कर्मों के भार के नीचे दबी हुई है। इन कर्मो के भार से छुटकारा पाना अथवा दूसरे शब्दो मे कर्मो की शिलाओ के नीचे से आत्मा की दबी हुई शक्तियो को बाहर निकालना इतना सहज और सरल कार्य नहीं है। इसमे कठिनता अवश्य है, लेकिन यह कोई असम्भव कार्य नही है। समीक्षण की साधना–पद्धति इस कठिनतम कार्य को करने योग्य बना देती है।

जिस किसी आत्मा ने सम्यग्ज्ञान के प्रकाश मे अपने मूल स्वरूप को पहिचाना है, अपनी शक्तियो का समीक्षण किया है तथा उन्हे प्रकट करने का सकल्प बनाया है एव बाहर और भीतर की पूर्ण एकरूपता के साथ उस दिशा मे निरन्तर चला है तो वह अवश्य सफल भी हुआ है। इस सफलता की आधारशिला बाहर और भीतर की एकरूपता ही रही है। वही पुरूषार्थ सफल होता आया है तथा सफल होता है जो बाहर और भीतर की एकरूपता पर आधारित रहता है। कर्मो की शिलाओ के नीचे से आत्मा के छुटकारे के लिये ऐसी एकरूपता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है।

चतुर्गति ससार मे भ्रमण करते हुए एक ही स्थान ऐसा है कि जिस स्थान पर इस सत्पुरूषार्थ का विवेक जागृत हो सकता है, और वह स्थान और समय हेता है मनुष्य जीवन का। मुनष्य जीवन मे जब सत्सग का आश्रय लिया जाता है तो उस विवेक के जागृत एव कार्यरत होने मे सन्देह नही रह जाता है। यही जीवन काल होता है जब भूत और भविष्यत् की दोनो कल्पनाओ को सामने रखकर वर्तमान को भव्य बनाने का सुन्दरतम साध्य साधा जा सकता है एव जीवन को समग्र रूप से पहिचाना जा सकता है। यदि मनुष्य भूतकाल के आधार पर वर्तमान का चिन्तन करे कि किस प्रकार के कार्य व्यवहार एव स्वभाव के कारण यह आत्मा कर्मों के भार के नीचे दबी है और अब आत्मा अपने स्वभाव, व्यवहार तथा कार्यो मे किस प्रकार का परिवर्तन किया जावे, जिससे वह कर्म भार को अपने ऊपर

से हटा सके और अपनी शक्तियो का सम्यग् विकास कर सके ? क्योकि वर्तमान के परिवर्तन के आधार पर ही श्रेष्ठ भविष्य का निर्माण किया जा सकता है। इस रूप मे भविष्य का आदर्श वर्तमान के सामने रहता है तो परिवर्तन की प्रक्रिया सहज बन जाती है। भविष्य का आदर्श होना चाहिए–सिद्ध स्वरूप। आत्मा को अपने सम्पूर्ण सत्पुरुषार्थ के फलस्वरूप इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिये समीक्षण ध्यान साधना पद्धति की अपेक्षा है । जिसके द्वारा हम अन्तर्बाह्य–उभय वृत्तियो का समीकरण कर लेते हैं, जो सिद्ध स्वरूप की मूल भूमिका है।

लक्ष्य जब सामने रहता है तो उसके अनुरूप वर्तमान जीवन को ढालने के प्रति एकाग्रता का निर्माण होता है। यह जो एकाग्रता है, वही सम्पूर्ण योगो की एकरूपता पर बल देती है। यह एकरूपता जितनी घनिष्ठ बनती है, जीवन की गति लक्ष्य के प्रति उतनी ही केन्द्रित बन जाती है। फिर यही प्रमुख ध्यान रहता है कि मुझे भविष्य के आदर्श एव लक्ष्य के अनुसार इस वर्तमान जीवन को श्रेयस्कर बनाना है तथा श्रेय–मार्ग पर चलना है। ऐसी निष्ठा जब बन जाती है तो आत्मा को कर्मो की शिला के नीचे से छुटकारा दिलाने मे अधिक कठिनाई नहीं रह जाती है।

लक्ष्य के समीक्षण से बाहर-भीतर की एकरूपता

आपने धनुर्धर अर्जुन के लक्ष्य–वेध की कहानी सुनी होगी–जब द्रोणाचार्य ने वृक्ष पर रखी हुई काष्ठ की चिडिया की ऑख मे तीर चला कर अपनी कुशलता का परिचय देने का सभी शिष्यो को निर्देश दिया तो सभी ने कहा कि उन्हे सभी बेठे हुए लोग, चिडिया और सारा दृश्य दिखाई दे रहा है। केवल अर्जुन ने ही कहा कि उसे चिडिया की ऑख के अलावा कुछ भी दिखाई नही दे रहा है और इस एकाग्रता के कारण उसी का निशाना ठीक लगा। जब सम्पूर्ण एकाग्रता से, समीक्षण दृष्टि से कोई लक्ष्य की तरफ देखता है तो उसके मन, वचन, काया की सम्पूर्ण योग व्यापार की एकरूपता वन जाती हे। ऐसी वाहर ओर भीतर की सम्पूर्ण एकरूपता के आधार पर ही सफल

लक्ष्य–वेध हो सकता है। समीक्षण द्वारा केन्द्रित लक्ष्य के प्रति इसी प्रकार की एकरूपता सधती है।

ऐसी सुदृढ एकाग्रता एव एकरूपता की मनःस्थिति मे लक्ष्य मार्ग पर चलते हुए चाहे कैसी और कितनी ही बाधाएँ आवे, उनसे सफल सघर्ष करने का साहस सहज ही मे जागृत हो जाता है। व्यक्ति उन बाधाओ को साहस एव धैर्य पूर्वक दूर करने का यत्न करता है। कहा है–"श्रेयासि बहुविध्नानि" अर्थात् कल्याण कार्य मे अनेक बाधाएँ आती ही है। लेकिन श्रेय कार्यो मे सलग्न पुरूष उन बाधाओ तथा विघ्नो के बीच मे भी अविचलित गति से चलते रहते हैं क्योकि इस दृढता मे उनकी बाहर और भीतर की एकरूपता रूपी समीक्षण साधना ठौर–ठौर पर सहायता करती है।

अपने योग को साध लेने वाले श्रेष्ठ पुरूष विघ्नो से सघर्ष करके भी अपने अभीष्ट स्थान तक पहुँचने का सफल प्रयत्न करते है। विघ्नो की ऑधियो और बाधाओ के तूफानो से वे कभी भी अपने श्रेय मार्ग का परित्याग नही करते है, बल्कि दृढतापूर्वक अपने मार्ग पर चलते हैं। गति मे कभी तीव्रता आवे या मदता यह दूसरी बात है। लेकिन उनकी गति इसी मार्ग पर रहती है। पवित्र मार्ग को वे अपने चरण–चिह्नो से हटने नही देते हैं। ऐसे ही सत्पुरूषार्थी पुरूष अपने निबिड कर्म बन्धनो को तोडने मे सफल होते है एव अपनी बाहर और भीतर की एकरूपता का आदर्श परिचय देते है।

एकरूपता का प्रारंभ कहाँ से?

प्रश्न यह है कि ऐसी आदर्श एकरूपता को साधने के प्रयत्न का प्रारभ कहॉ से किया जाय?

किसी का कथन है कि इसका प्रारभ भीतर से किया जाय, क्योकि भीतर ही सब कुछ है। आत्मा का शुद्ध अनुभव ही महत्त्वपूर्ण होता है। आत्मा की सारी पवित्र शक्तियॉ आन्तरिकता मे भरी हुई होती हैं, इसलिये यह कार्य भीतर से ही हो सकता है। बाहर से कुछ

भी नही हो सकता। जबकि कुछ का कहना है कि इस कार्य का प्रारभ भीतर से नही, बाहर से होगा, बाहर से ही भीतर मे जाया जा सकता है। यदि बाहर का व्यवहार व्यवस्थित नही है तो भीतर प्रवेश नही हो सकेगा।

दोनो कथन दो शिखाओ पर हैं। दोनो दो अलग–अलग बातो को लेकर चल रहे हैं, लेकिन दोनो का एक दूसरे के साथ कोई तालमेल नही है। जब तक दोनो का समन्वय नही बनता है, दोनो को ही विफलता का मुँह देखना पडता है। जिस आत्मा से सयुक्त शरीर रूपी जीवन को यह दुनिया देख रही है, उस जीवन का बाहरी हिस्सा और भीतरी हिस्सा आपस मे बिल्कुल कटे हुए नही है। उनका सर्वथा सम्बन्ध–विच्छेद हो ऐसा नहीं है। ये दोनो हिस्से एक दूसरे से जुडे हुए होते है, बल्कि दोनो एक दूसरे के अभिन्न अग होते हैं। बाहर भीतर परस्पर भिन्न नहीं होते हैं। तलवार का दृष्टात ही ले ले। उसका एक हिस्सा तीखा होता है और दूसरा हिस्सा (धार) मोटा होता है, लेकिन तीखा हिस्सा भी तभी काम कर सकेगा जबकि दूसरे हिस्से का पीठ बल उसको मिले। यदि तलवार का तीक्ष्ण भाग ही कार्य करे और उसको दूसरे भाग का व बाहरी बल नहीं मिले तो क्या वह तलवार काम मे आ सकेगी ?

एक दृष्टि से इस जीवन को भी इसी रूप मे देखने की आवश्यकता हे। ऊपर से ऑख, कान, नाक आदि की सारी की सारी सरचना दिख रही है एव उसकी प्रवृत्तियॉ भी ज्ञात हो रही हैं, लेकिन उनका मूल सचालन कहॉ से होता है और कहॉ से होना चाहिये–इसको जाने बिना जीवन का सदुपयोग नही किया जा सकता। आज जीवन किसके अधीन चल रहा है और वास्तव मे उसको किसके अधीन चलना चाहिये–इसका विवेक आवश्यक है। व्यक्ति जब प्रमाद के अधीन होता है तो उसके जीवन मे आत्म–शासन का अभाव दिखाई देने लगता हे। नेत्र उसके अधीन नहीं देखते, कान सुनने मे उसकी आज्ञा नहीं मानते और जिह्वा रसलोलुपता मे मनमानी करने लगती हे। प्रमत्त अवस्था मे अनुशासन आत्मा का नही रहता, बल्कि

इन्द्रियॉ आत्मा को अपने शासन मे ले लेती हैं। शरीर का प्रत्येक भाग या उसकी प्रत्येक इन्द्रिय आत्म–प्रदेशो से सयुक्त होती है, लेकिन आत्म–शक्ति के ऊपर ये इन्द्रियॉ तथा इनकी लोलुपता हावी हो जाती है।

एकान्तवाद से नहीं, समीक्षण से समस्या का समाधान

दार्शनिक क्षेत्र मे विभिन्न विचार भिन्न–भिन्न तरीको से आते है। किन्ही का कहना है कि आत्मा सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त नही है, बल्कि केवल हृदय स्थल मे ही निवास करती है। कुछ कहते हैं कि नहीं, उसका निवास केवल मस्तिष्क मे है। ये जितने भी मत हैं, बुद्धि कल्पित है– पुस्तको के सहारे पर बने हुए हैं। जिनका सोचना सिर्फ बुद्धि तक ही सीमित रह जाता है, वे अन्दर की अनुभूति प्राप्त नही कर सकते हैं। लेकिन जो व्यक्ति अपनी बुद्धि का भी कुशल प्रयोग करते है तथा अनुभव के क्षेत्र मे उतरते है, वे आत्म–शक्ति की वास्तविक अनुभूति प्राप्त करते है। उन्हे तथ्य रूप अनुभूति के समीक्षण से सत्य का साक्षात्कार होता है। उनका व्यवहार भी तब उस सत्य से जुड जाता है और सत्य से जुडकर वह समन्वय की कला सीख लेता है, वह अन्तर का समीक्षण कर लेता है।

कोई भी एक मत एकान्त रूप से सत्य नही होता है, क्योकि एकान्तवादिता हठ के आधार पर चलती है तथा हठ से मिथ्या मान्यताओ का ही पोषण होता है। इसलिये किसी भी, और खासतौर से वैचारिक अथवा दार्शनिक, समस्या का समाधान एकान्तवाद से नही, समन्वय से प्राप्त होता है। भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणो के बीच मे रहे हुए सत्याशो को परखना–पहिचानना तथा उनको समन्वय के सूत्र मे पिरोकर जीवन के विचार व व्यवहार मे उतारना–यह सद्विवेकी पुरूष ही कर सकता है। इसमे समन्वय का स्वरूप समझौतावादी नहीं होना चाहिये, क्योकि समझौते का अर्थ पीछे की ओर पैर सरकाना होता है। यह समन्वय पूर्णत सैद्धान्तिक तथा सत्यानुगामी होना चाहिये।

ऐसा समन्वय ही सच्ची अनुभूति का वाहक होता है।

जिस पुरूष का कहना है कि भीतर ही सब कुछ है और बाहर से कुछ भी ग्रहण नही किया जा सकता है, वह पुरूष बाहर से अपने व्यवहार मे कोई परिवर्तन नही लाता है। वह अपने बाहर के व्यवहार को यथावत् रखता है। उसके पैर गलत रास्ते पर जावें तो जावे, उसके हाथ हिसा के लिये उतारू रहते है तो रहे। उसका तर्क यही होता है कि बाहर से कटु शब्द बोल रहा है तो उससे क्या फर्क पडता है—भीतर का मन ठीक रहना चाहिये। लेकिन ऐसे कथन और आचरण को क्या उचित कहा जा सकता है? यदि भीतर ठीक है तो भला वह बुरे काम मे प्रवृत्ति ही कैसे करेगा? यदि भीतर का जीवन पवित्र है तो पैर कभी गलत रास्ते पर नही जायेगे, हाथ कभी हिसा मे नही लगेगे और मुह कभी कटु शब्दो का उच्चारण नही करेगा। विचारो मे शुद्धता होगी तो व्यवहार कभी भी अपवित्र नही होगा—यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। इसका कारण है कि अन्दर का प्रवाह ही बाहर प्रकट होता है। अन्दर कुछ और हो और बाहर कुछ और दिखाई दे—ऐसी वस्तुस्थिति नही होती है। यह समीक्षण दृष्टि नही है। यदि उसमे इरादतन भेद होता है तो वहॉ विषमता है, धोखाधडी है और एकान्तवाद की बात है। बाहर और अन्दर की स्थितियो की समीक्षात्मक एकरूपता ही वास्तविक होती है, अत उनका समन्वय ही श्रेयस्कर है।

भीतर बाहर का सम्बन्ध समीक्षण का विषय : तर्क का नहीं

एक व्यक्ति फिल्टर किया हुआ पानी पीना चाहता है ओर ऊपर के टैक से ही वह पानी लेना चाहता है तो क्या वह सीधा वहॉ से पानी ले सकेगा? वह पानी नल के जरिये ही उसको मिल सकेगा। नल छोटा होता है, लेकिन वह टैंक से जुडा हुआ होता है ओर उससे टैंक का ही पानी मिलता है। नल मे आने पर भी वह पानी शुद्ध ही रहेगा, क्योकि टॅक ओर नल के पानी मे भिन्नता नहीं रहती

है। नल एक तरह से टैक का ही अग होता है, इसलिये शुद्ध या अशुद्ध जैसा पानी टैंक मे होगा, वैसा ही पानी नल से आयेगा। जैसा टैंक और नल का सबध है, वैसा ही इस आत्मा और शरीर का सबध है। इस शरीर के सभी अवयवो मे आत्मा व्याप्त है। यह नहीं है कि वह किसी एक अवयव मे ही रही हुई हो। जिनका यह कथन है कि आत्मा एक ही स्थान पर है और उस स्थान को ही पकडना है – यह गलत है और अनुभूति से परे है।

सच बात तो यह है कि भीतर–बाहर का सबध मुख्यत अनुभूतिगत समीक्षण का विषय होता है, तर्क का नही। अनुभूति और तर्क मे फर्क होता है। तर्क सही भी हो सकता है और गलत भी। तर्क से पीछे भी हटा जा सकता है और आगे भी बढा जा सकता है। लेकिन अनुभूति सच्चे अनुभव के साथ भीतर की शक्ति को लिये हुए होती है, इसलिए गलत नही होती। अनुभव यह बताता है कि आत्मा सम्पूर्ण शरीर मे समस्त अवयवो मे यथा स्थान व्याप्त होती है। अगुली के ऊपरी हिस्से मे भी आत्म प्रदेश रहे हुए हैं, इसलिए अगुली अगर आग से छु जाएगी तो उसकी वेदना मात्र अगुली को नही, सारे शरीर को होगी। यह नहीं होता है कि वेदना अगुली पर ही हो और मस्तिष्क मे शान्ति बनी रहे। नेत्र सर्प को देखते हैं तो क्या भय नेत्रो मे ही फैलता है और कॅपकॅपी वहीं पैदा होती है? सर्प को देखते ही सारे शरीर मे कॅपकॅपी छुटती है और सारा शरीर वहॉ से भागता है। यदि आत्म प्रदेश अमुक अवयव मे ही रहते तो सारा शरीर प्रभावित नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव यह है कि शरीर के जितने अवयव व अग–प्रत्यग हैं, उन सबमे आत्म–प्रदेशो का निवास होता है। यह बात और है कि आत्मा अपना सचालन एक केन्द्र से करती है या अलग–अलग स्थानो से करती है। लेकिन सचालन की सूचना सारे शरीर को मिलती है और सब कुछ उसी के सहारे होता है। यह सचालनकर्ता शरीर नहीं, भीतर का चैतन्य होता है। वही चैतन्य मन सारे शरीर को चलाता है।

भीतर और बाहर का सबध ऐसा होता है कि वह अधेरी रात भी शरीर की सावधानी रखकर चलता है और किसी तरह की दुर्घटना नही घटती है। यह विवेक की जो शक्ति होती है, वह समीक्षण की शक्ति होती है और भीतर जो कुछ होता है, वही बाहर के व्यवहार मे प्रकट होता है। यह आत्मा यदि भीतर पवित्र है तो वही बाहर प्रकट होगी, जैसे कि टैक का ही पानी नल के जरिये से बाहर आता है। ये ऑख, नाक, कान, मुॅह आदि जीवन रूपी टैंक के ही नल के मुहँ है और इनका जो व्यवहार दिखाई देता है, वह भीतर के विचार के अनुसार होता है। हाथ यदि सद्व्यवहार कर रहे है तो समझना होगा कि भीतर का विचार उस सद्व्यवहार का प्रेरक है। भीतर का ही चिन्तन बाहर के व्यवहार मे प्रकट होता है। इसी प्रकार बाहर के व्यवहार से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उसके भीतर कैसा विचार होगा? यदि इन दोनो मे समन्वय नही होगा तो दोनो तरफ गडबडी हो जायेगी। इसलिये प्रारम्भ यदि बाहर से करे तो वह भीतर पहुॅचेगा ही। बाहर के सद्व्यवहार से भी भीतर शुद्धि का सचार हो सकता है, तो अन्दर से प्रारभ करेगे तब भी वह आन्तरिकता बाहर के व्यवहार मे सशोधन लायेगी ही। बाहर से भीतर अथवा भीतर से बाहर एक ही बात है, यह समन्वयात्मक सार है। इस तथ्य का स्पष्ट ज्ञान केवल अनुभूति के माध्यम से ही किया जा सकता है।

बाहर और भीतर के समीक्षण का परिणाम-कर्ममुक्ति

बाहर ओर भीतर के समीक्षण की विधि को भली–भाती इस अभिप्राय से समझना हे कि आत्मा को आठो कर्मो की शिला के नीचे से बाहर निकाल सकने का सूत्र हाथ लग सके। इसका सहज ओर सुगम सूत्र यह है कि वह सबसे पहले शरीर के सारे अवयवो मे ऐसी शक्ति और क्षमता का समीक्षण करे कि नये सिरे से होने वाले गाढे कर्म–वन्धन को रोक सके। हाथ बुरे कार्यो से हटकर अच्छे कार्यो मे लगे। ये नेत्र बुरे दृश्यो से दूर रहकर सदा सदाशयता के दृश्य देखे ओर अन्य इद्रियॉ भी वाहर भटकना छोड कर आत्मा की

आन्तरिकता मे विचरण करने की अभ्यस्त बने।

गृहस्थ अवस्था का भी जीवन का एक पक्ष है और साधु अवस्था का भी। जीवन की दोनो स्थितियो के लिए इस प्रार्थना मे सकेत है कि–

"सयल ससारी इन्द्रिय रामी,
मुनिगण आतम रामी रे।
मुख्य पणै जे आतम रामी,
ते केवल निष्कामी रे।।

यहॉ 'सयल' शब्द से समस्त ससारी लोगो का उल्लेख है। 'सयल' से तात्पर्य यह है कि जिनको अपने हित और अहित का विवेक नहीं है। जो सासारिकता मे भटकते हुए एक दृष्टि से बेहोशी की हालत मे चल रहे है। बेहोशी का मतलब समझ ले। जीवन निर्वाह करने के दो तरीके होते हैं। एक तो यह कि अपनी आय के अनुसार खर्च किया जाय और दूसरा यह है कि खर्च का कोई विचार नही रख कर कर्ज करते चले जावे। पहला तरीका होश का तरीका है तो दूसरा बेहोशी का तरीका है। इसे ही कर्म–बन्धन के सदर्भ मे देखे। आत्मा नये कर्मो के बन्धन से रुकी रहे और कर्ज नहीं बढावे–यह बाहर और भीतर की एकरूपता का और समीक्षण साधना का परिणाम होता है। जो सासारिकता मे पूर्णत डूब कर बेहोशी से चलते है, उन्हे इस बात का भान नहीं होता है कि वे किस प्रकार पग–पग पर नये कर्मो का बधन करते हुए आत्मा को कर्मो की शिला के नीचे ज्यादा से ज्यादा दबाते रहते हैं। यह इसलिए होता है कि वे भीतर को नहीं समझते और बाहर को नियत्रित नही कर पाते। इस बेहोशी को दूर करने का उपाय यह है कि भीतर को समझे तथा भीतर बाहर को एकरूप बनावे।

अन्तर–बाहर को समीक्षण से जोड़ें

वर्तमान जीवन को टिकाने के लिए बाहर की दृष्टि से भी

आवश्यक सामग्री की अपेक्षा रहती है। उसके लिए इन्सान हाथ पैर हिलाता है– काम करता है। लेकिन इसके साथ–साथ यदि वह ऐसा व्यवहार बनावे कि शरीर को चलाने मात्र के लिए या परिवार के लिए जितना चाहिए उतना ही अर्जित करे और बाहर को भीतर से जोडकर रखे तो भीतर के श्रेष्ठ लक्ष्य की तरफ उस आत्मा की गति हो सकती है। विवेकवान् पुरूष ऐसे ही व्यवसाय को अपनाएगा जिसमे अनीति और महा–आरम्भ की स्थिति नही हो। महा–आरम्भ वह है जिसमें भयकर हिसा होती हो, पचेन्द्रिय तक की घात हो। महा–आरम्भ महापाप होता है, इसलिए बाहर और भीतर को जोडकर चलने वाला पुरूष महा–आरम्भ से बचकर चलता है, क्योकि गृहस्थ जीवन मे सामान्यत अल्पारम्भ से बचा नही जा सकता है तथा अल्प–आरम्भ के अल्प पाप का निवारण भी आसान होता है।

व्यवसाय का समीक्षण

जिस किसी धन्धे का एक सद्गृहस्थ चयन करे, वह महा–आरम्भ वाला नही होना चाहिए– यह शास्त्रकारो का निर्देश है। भगवान् महावीर के व अन्य तीर्थंकरो के जो श्रावक हुए हैं वे इस प्रकार का विवेक लेकर चलते थे। चाहे व्यवसाय की दृष्टि से वे खेती करते थे, लेकिन उसमे भी पूरा विवेक रखते थे। विवेक पूर्ण खेती के धन्धे मे महा–आरम्भ नही होता है और भी कई धधे अल्पारभ के हो सकते है, इसके विपरीत कई धधे महा–आरम्भ के होते हैं, परन्तु ऊपर से महारम्भ जेसा नही दिखलाई पडता है। आप ब्याज लेने के ही धधे को लीजिए। ऊपर से यह लगता है कि इसमे चीटी की टाग को भी चोट नही लगती, लेकिन असल मे यह धन्धा कितना शोषक और मानव रक्त को पीने वाला हो गया है, जिसका अनुभव आप मे से कई लोगो को होगा। कोई भी धन्धा हो–अपने स्वार्थ पर ही आधारित ही नही हो बल्कि दूसरो को सहयोग देने वाली भावना वाला भी हो। पहले कोई सार्थवाह व्यापार के निमित्त जहाज लेकर विदेशो के लिये चलता था, तो नगर मे जाहिर सूचना करवा देता और जो भी चलना

चाहते, सबको व्यापारिक सहयोग देता। उसकी वृत्तियो मे उदारता होती थी।

तात्पर्य यह है कि धन्धा या व्यवसाय यह बाहर की प्रवृत्ति होती है, लेकिन यह प्रवृत्ति भी समीक्षण के द्वारा भीतर की सद्वृत्ति से जुडी होनी चाहिये। कोई–कोई कह देते हैं कि धन्धे मे धर्म नहीं देखा जाता याने कि धन्धे मे उचित–अनुचित सब कुछ करना व्यावसायिक नियमो मे मान लिया जाता है। यह गलत दृष्टिकोण है और अन्त करण को अनैतिकता से रगने वाला है। ब्याज खोरी के धन्धे का आज का रूप महा–आरम्भ वाला हो गया है और ऐसी विकृति इसी कारण आती है कि बाहर को भीतर से जोड कर नहीं रखा जाता है और ऐसी मनोदशा मे समीक्षण का श्रेष्ठ लक्ष्य भी सामने नहीं रह पाता है। सुनने को मिला कि उडिया जाति परिश्रमशील होते हुए भी गरीब होती है। अन्य पुरुष उडिया जाति की परम्परा मे नहीं होते हुए भी धनवान् पाये जाते हैं। ऐसा क्यो ? इस रहस्य को प्रकट करते हुए कहा गया कि जो बाहर के व्यापारी यहॉ आकर बस गये हैं वे ब्याज का व्यापार करते है। उडीसा मे चावल की उपज अधिक होती है। चावल पकने मे कुछ महिने अवशेष रहते है। उडिया निवासी ऐसे समय पर व्यापारी के पास जाते हैं और कहते हैं सेठ 100 (सौ) रुपये चाहिए। चावलो की फसल आने तक के लिए वह रुपये देता है। ब्याज मे छिलके सहित एक बोरी चावल लेता है। यह बात वस्तुत सत्य है, तो कल्पना करिये कि 100) रुपये के तीन मास का ब्याज छिलके वाले एक बोरी चावल लेता है। वह चावल कितने रुपये का होता है, इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि ब्याज लेने वाला देने वाले के परिवार की कितनी क्या दुर्दशा करता है ? ऐसे पुरुषो के मन मे मनुष्यो के प्रति दया भी नहीं रहती है। इस प्रकार कितने मानवीय परिवारो का अहित होता है यह छुपा हुआ नहीं रह पाता है।

मानव परिवार का इतना अहित विवेक पूर्वक खेती करने वालो

के कैसे हो सकता है ? ऐसे ब्याज के व्यवसाय से खेती के धन्धे की तुलना करने वाला खेती की अपेक्षा ब्याज का व्यवसाय कितना हीन एव न्यून स्तर का है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, प्रभु महावीर के पास आनन्दजी श्रावक ने बारह व्रत स्वीकार किये। उस समय 500 सौ हलवा कृषि आदि की जमीन एव अमान्य मर्यादा के साथ 40,000 गायो के सपोषण की भी मर्यादा रखी थी। यदि कृषि कर्म महापाप का कृत्य होता तो प्रभु महावीर आनन्दजी श्रावक को फरमाते कि कृषि कर्म करने वाला श्रावक की श्रेणी के अन्तर्गत नही रह सकता है, किन्तु प्रभु ने कृषि कर्म का निषेध नही किया। इसी प्रकार अन्य श्रावको के वृत्तान्तो से भी न्यूनाधिक रूप मे खेती—गोकुल आदि का वर्णन मिलता है।

समीक्षण द्वारा भीतर बाहर का मूल्यांकन

बाहर की कसौटी पर भीतर का तथा भीतर की कसौटी पर बाहर का मूल्याकन किया जा सके और वैसा मूल्याकन खरा उतरे, तब समझना चाहिये कि बाहर और भीतर की एकरूपता स्थापित हो गई है। जो भीतर होगा वही बाहर के व्यवहार मे प्रकट होगा तथा बाहर के व्यवहार से पक्का अनुमान लगाया जा सकेगा कि भीतर का विचार कैसा है? बाहर और भीतर जब एकरूप बनकर सदाचरण की दिशा मे गति करते हैं, तब वहॉ पर आत्मा के व समग्र जीवन के कल्याण का प्रसग बनता है। इस मूल्याकन का मूल आधार होगा—समीक्षण ध्यान।

बाहर के व्यवहार की ओर आपका ध्यान एक प्रसग द्वारा दिलाऊँ—मैं जब उडीसा मे विहार कर रहा था तब बगूमुडा गॉव मे मुझे सुनने को मिला कि एक उडिया व्यक्ति ने किसी व्यापारी से 20) रू उधार लिये थे। उस व्यापारी ने ब्याज जोडकर थोडे दिनो मे ही 100) रू बना लिये। उस बीच मे पालिका या पचायत का चुनाव आ गया और वह व्यापारी भी उसमे उम्मीदवार बना। उसने उस उडिया से कहा कि तू मुझको वोट देना और देगा तो तेरे बकाया रूपये माफ

कर दूँगा वरना तुरन्त वसूल करूँगा। सयोग वश उसने दूसरे उम्मीदवार को वोट दे दिया और उसका व्यापारी को पता चल गया। फिर क्या था, उसने दावा किया, कुडकी लाया व कच्ची झौपडी को नीलाम कराने लगा। उसकी पत्नी गर्भवती थी जिसके लिए उसने पॉच दस सेर धान जमा कर रखा था, उसको तथा टूटे–फूटे बरतनो को, कपडो को सबको नीलाम करवा दिया। उसकी पत्नी बहुत रोयी, वह गर्भवती थी, अत उसने दया की भीख मॉगी, परन्तु उसका हृदय नही पसीजा। आखिर उस व्यक्ति को अति क्रोध आ गया और वह लकडी लेकर बाजार मे गया और सेठ के सिर पर वार कर दिया। समीप खडे अन्य व्यक्तियो ने लाठी छीनकर सेठ को दे दी और सेठ ने ऐसा मारा कि वह उडिया खत्म हो गया। वह व्यापारी प्रसन्न हो रहा था कि वोट नही देने का खूब मजा चखाया। ऐसे व्यवहार को आप क्या कहेगे और ऐसे व्यवहार से उसके भीतर का क्या अनुमान लगायेगे कि वह दिल से कितना काला और क्रूर था? यह कैसा धन्धा है और यह मनुष्य को मनुष्यता से भी कितना पतित बना देता है? अन्त मे उस व्यापारी के उस केस मे हजारो रूपये पूरे हो गये।

इस बाहर के व्यवहार की तरफ इसलिए बल देना चाहता हूँ कि सभी को इसके सबध मे अपने–अपने धन्धे, व्यवसाय अथवा सामान्य व्यवहार की आलोचना स्वय करने का अवसर मिले तथा स्वय अनुमान लगा सके कि ऐसे धन्धे के या अन्य किसी भी बात के निमित्त बाहर का जो व्यवहार किया जाता है उस समय भीतर का विचार कितना निर्दय, कठोर और क्रूर हो जाता है? और यदि ऐसा होता है तो मानना पडेगा कि वह बाहर भी मैला है और भीतर से मैला है। इसलिए आलोचना इस दृष्टि से करनी चाहिये कि बाहर की कसौटी पर भीतर का और भीतर की कसौटी पर बाहर का मूल्याकन हो तथा दोनो को एकरूप बनाते हुए दोनो के समीक्षण तथा परिमार्जन के उपाय करते रहे।

समीक्षण महानता की उपलब्धि

इस प्रकार की एकरूपता से महानता की उपलब्धि होती है और महानता सदा ही आत्मोन्नति से सम्बन्धित होती है। ससारी व्यक्तियो मे ऐसे भी होते हैं जो ऐसा क्रूरतापूर्ण ब्याज का अथवा महा–आरम्भ का धन्धा नही करते तथा चौबीसो घटे नैतिकता का तथा भीतर के विचार व बाहर के व्यवहार की शुद्धि का पूरा–पूरा ध्यान रखते है। इन्द्रियो की आसक्ति से भी वे दूर रहते हैं तथा आत्मार्थी बनकर जीवन को लोकोपकार मे नियोजित कर देते हैं। ऐसे पुरूष ससार को त्याग कर मुनि–धर्म की साधना पथ पर भी अग्रसर होते है।

जीवन के इस आध्यात्मिक समीक्षण के प्रति किसी को भी उपेक्षित नही रहना चाहिये और यथाशक्ति इस दिशा मे प्रवृति करनी चाहिये। बाहर के अपने व्यवहार को देखे– भीतर के विचार की समीक्षा करे और दोनो स्रोतो से सौजन्य का प्रवाह प्रवाहित करे, तो समीक्षण ध्यान साधना की गहनता मे सहज ही प्रवेश होगा और वह साधना परम आनन्द अतुलित शान्ति के द्वार तक पहुँचा देगी। उस साधना मे प्रवेश कर मगलमुखी आचरण की ओर अग्रसर बने।

□□

7. अहं वृत्ति का समीकरण

समीक्षण ध्यान साधना पद्धति का केन्द्रीय भाव है कि हम भूत, भविष्यत् को गौण कर वर्तमान की परिक्रमा करे– वर्तमान का समीक्षण करे। भूत व्यतीत हो गया और भविष्यत् अभी आया नहीं है। वर्तमान प्रतिक्षण बीत रहा है– इस दृष्टि से वर्तमान के क्षण ही विशेष महत्वपूर्ण क्षण होते हैं। यह समय भी भूत मे जाने वाला है लेकिन यदि इस समय को सार्थक कर लिया तो समझिये कि इस जीवन की वास्तविक सार्थकता प्रतिफलित हो जाएगी। हम विद्वान् एव पडित की विभिन्न परिभाषाएँ करते है किन्तु प्रभु महावीर के दर्शन मे विद्वत्ता अथवा पाण्डित्य को समय की सार्थकता के साथ जोडा गया है। भ महावीर ने कहा है–

"खण जाणाहि पडिए" अर्थात पडित वही है जो एक–एक क्षण को जानता है याने कि एक क्षण को भी महत्वपूर्ण मानता है और उसको आत्म–कल्याण के पवित्र कार्य मे नियोजित करता है। जीवन और आत्म–समीक्षण मे लगाता है। यह वीतराग देव की उद्घोषणा है। इसमे क्षण का अर्थ सिर्फ समय काल खण्ड तक ही सीमित नहीं है। इस क्षण का बहुत विशाल एव विराट अर्थ है। इस समय इस क्षण का अर्थ इस मनुष्य जीवन से लिया जाय। इसलिए जो इस मनुष्य जीवन के अमित महत्व को समझकर इसको साध लेता है, वही पण्डित है। किन्तु मनुष्य जीवन के महत्व की जानकारी मस्तिष्क तक ही सीमित नही रहनी चाहिये, अपितु अन्त करण मे उतर जानी चाहिये और जीवन के अणु–अणु मे व्याप्त हो जानी चाहिये। जब जीवन का प्रत्येक अणु, प्रत्येक क्षण तथा प्रत्येक छोर इस ज्ञान से प्रभावित हो जाता है, तो उसकी झलक जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे स्पष्ट रूप से प्रकाशित होने लग जाती है।

समीक्षण बौद्धिक नहीं, आत्मिक

जीवन का इसी क्षण समीक्षण करिये, अर्थात एक क्षण को भी व्यर्थ न जाने दीजिये तथा उस क्षण को साधिये अर्थात् सार्थक बनाइये। वस्तुत जीवन इसी क्षण चमक सकता है, जिस क्षण जीवन का समीक्षण होता है, उसी क्षण से आत्मिक स्वरूप के लिए प्रतिक्षण को कार्य रूप मे परिणित करने लगता है। ऐसी अलभ्य परिणति को बिरले भव्य पुरूष ही अपने जीवन मे उद्घाटित कर सकते है।

कोई व्यक्ति वीतराग देव द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तो के आधार पर कुछ जान भी लेता है। लेकिन जब उसका जानना मस्तिष्क तक ही सीमित रह जाता है तो वह जीवन मे फलित नही हो सकता है। मस्तिष्क की जो कुछ भी कला है, उसे बौद्धिक कला कह सकते हैं। बुद्धि के साथ जब तक आन्तरिकता का पुट नही होता है तब तक बुद्धि की कला भी महज कलाबाजी ही रह जाती है। वैज्ञानिक एव भौतिक क्षेत्रो जो कार्य किया जाता है, वह बौद्धिक कला के प्रभाव से होता है। उसमे भी यदि आन्तरिकता का अभाव हो तो वह बुद्धि वहॉ भी स्वार्थ और क्रूरता ये भ्रष्ट बन जाती है। लेकिन आध्यात्मिक क्षेत्र मे प्रगति करने के लिए तो इस बुद्धि का प्रयोग आन्तरिकता से ओतप्रोत होना चाहिये। जहॉ सिर्फ मस्तिष्क की कसरत होती है, वहॉ जीवन की आन्तरिक अनुभूति का अभाव ही रहता है तथा उस अनुभूति के बिना समीक्षण दृष्टि भी शिथिल हो जाती है। बुद्धि की वह कला चाहे, बाहर से स्वय आत्मिक स्वरूप का सही प्रतिपादन भी कर रही हो, लेकिन वह अनुभूति-मूलक समीक्षण बिना अपनी आत्मा के कल्याण मे सहायक नही बन सकती है। निज स्वरूप के समीक्षण के बिना सारा जीवन डालडा घी की तरह नकली ही बना रहता है। परिणाम स्वरूप ऐसा कलाबाज व्यक्ति आध्यात्मिक विचारो का कुशल वक्ता हो सकता है, लेकिन स्वय उस आध्यात्मिकता का मर्म पहिचान नही पाता है। इसके लिए मनुष्य

का अत करण समीक्षण की साधना से भीगना चाहिये, वहाँ उसमे तरलता और सरलता आनी चाहिये।

वर्तमान जीवन जितनी मिलावट और जितना नकलीपन का चल रहा है, उतनी ही उसकी मौलिकता प्रकट नहीं हो पा रही है। आज के मनुष्य की बहुत कुछ गति अर्जित वृत्तियो की अगीकृति के साथ चल रही है, वह अपने मूल स्वभाव के समीप पहुँचने की चेष्ठा नहीं कर रहा है और जो जीवन मूल स्वभाव से दूर चल रहा है, वह उसमे किन्हीं भी भावो के साथ बह जता है। जिन भावो की बारम्बार आवृत्ति मन मे होती है, उनका भी वह ठीक से समीक्षण नही करता है। वह यह नही देखता या देखना नही जानता कि कौन से भाव असली और निजत्व की जानकारी कराने वाले हैं तथा कौन से भाव नकली होकर स्वय को भी छलने वाले है? यह देखना और जानना तथा आत्म–भावो का समीक्षण कर उन्हे अपनाना– भी क्षण को साधना है। बुद्धि अनुभूति से जुड कर प्रतिक्षण आत्म–समीक्षण करती रहे तथा आचरण मे ढल कर आत्म–कल्याण को साधती रहे तो वह क्षण सध जाता है और क्षण–क्षण से सारा जीवन सध जाता है।

समीक्षण का अभाव, अहं का फैलाव

जन्म के समय मे जो स्वाभाविक भाव थे, वे जन्मजात भाव थे। उनमे निश्छलता थी। लेकिन बच्चा ज्यो–ज्यो समझदार होता जाता है। तो अपने चारो ओर के वातावरण से, शिक्षण से और आचरण से नये–नये भावो को ग्रहण करता है। ये अर्जित भाव कहलाते हैं। और ये अर्जित भाव जिस रूप मे स्थाई बनते जाते हैं, अपनी परिधि मे बच्चे को जकडते जाते है।

ससार मे वर्तमान जीवन का जो वायु मण्डल है, वह अधिकाश रूप से भौतिकता के सस्कारो से प्रभावित है और उस भौतिकता के भावो की प्रबलता के कारण जीवन मे कषायो का भी बाहुल्य है। एक व्यक्ति को इस जीवन मे कुछ भौतिक सम्पत्ति प्राप्त

हो जाती है तो उसके प्रति राग भाव पैदा हो जाता है। यही राग भाव विभिन्न सबधो के साथ अपने परिवार जन एव अन्य व्यक्तियो के प्रति भी बन जाता है। इसी राग भाव से अप्राप्त भौतिक सम्पत्ति को प्राप्त करने की लालसा पैदा होती है। जब राग भाव किन्हीं पदार्थों या व्यक्तियो के प्रति गहरा बनता है तो उसको अपने ही लिए सुरक्षित रखने की भावना बलवती बनती जाती है। जो भी उस सुरक्षा को तोडने की कोशिश करता है, या उसमे बाधक बनता है, उसके विरूद्ध द्वेष भाव की उत्पत्ति होती है। राग की प्रतिक्रिया के रूप मे द्वेष पैदा होता है। इस राग द्वेष की परिणति मे अन्य कषाय भाव पैदा होते है, और स्थायी रूप से आत्मा के साथ रमते जाते हैं। ये कषाय भाव होते हैं– क्रोध के, मान के, माया के, और लोभ के। राग–द्वेष के मूल मे ममत्व होता है और ममत्व से क्रोध, मान, माया तथा लोभ के भाव पैदा होते हैं। ये सब कषाय भाव आत्मा के मूल स्वभाव को दबा देते हैं।

कषाय के इन्ही भावो मे अभिमान का भाव मनुष्य को मदमस्त बना देता है। मेरे पास इतना वैभव है, मेरे परिवार जन ऐसे हैं, मेरा पद इतना प्रभावशाली है, मै ऐसा विद्वान हूँ, बलशाली हूँ– इस प्रकार के विचारो से मनुष्य के मन मे अहकार के भाव प्रबल बन जाते हैं। यह अहकार की वृत्ति, मनुष्य को इस रूप मे केवल बाहरी वृत्तियो मे केन्द्रित बना देती है कि वह अपने अन्त करण की तरफ झाकना ही भूल जाता है। अहकार की वृत्ति जितनी सघन बनती जाती है, उतना ही व्यक्ति आत्मा की अनुभूति से दूर हो जाता है। अहकार बाहरी पदार्थों, तत्वो व सम्बधो पर टिका हुआ होता है, जबकि मूल अह याने मैं स्वय आत्मा होती है। अहकार की वृत्ति इतनी जटील होती है कि इसमे अह दब जाता है और आत्मा की अनुभूति गौण हो जाती है।

जो कषाय के भाव व्यक्ति के जीवन मे फैलते हैं और सुदृढ बन जाते है, वे सब अर्जित भाव होते है। ये अर्जित भाव अधिकतर भैतिकता प्रधान होते हे। नास्तिकता का पुट लिये हुए होते हैं अथवा

अन्य किसी परिवेश में आत्म–भावो के साथ सलग्न हो जाते हैं। साधारण व्यक्ति की बुद्धि मे इतना विवेक नहीं होता है कि वह इन आते हुए भावो के आत्मघातक प्रभाव को समझे तथा इनको अपने सयमित मन के द्वारा रोके। वह उस वायुमडल को भी स्पष्ट रूप से नही समझ पाता है कि उसमे किन–किन भावो की मिलावट रही हुई है? कौन–कौन से भाव निज स्वरूप को सुदर व उन्नत बनाने वाले हैं और कौन से भाव उसको भौंडा बनाने वाले है? ऐसी परख बृद्धि, सामान्य जन मे नहीं होती है। इसी कारण विभिन्न काषायिक वृत्तिया उसके जीवन को घेर लेती हैं। मुख्यत अहकार की वृत्ति उसके जीवन की विकासशील चेतना को लुप्त कर देती है। जब अन्तर चेतना दब जाती है तो वैसी आत्मा उन काषायिक वृत्तियो के अधीन बन जाती है और अपने स्वभाव को ही भूल जाती है।

विकृत वृत्तियों से आत्मा की परवशता

काषायिक भावो का समीक्षण करे तो विदित होगा कि यह वर्तमान जीवन बडा बेढगा बना हुआ है। व्यक्ति इन भावो के वशीभूत होकर ही स्वय के जीवन का समीक्षण नही कर पाता है और न ही आत्मा के मूल स्वभाव के सबध मे अनुचितन कर पाता है कि मैं मनुष्य हूँ, मुझे यह अमूल्य जीवन मिला है, तो मैं मनुष्यता तथा अपने स्वरूप के सही विकास की दिशा मे आगे बढ़ूँ और इसी कारण वह यह समीक्षण भी नहीं कर पाता है कि 'मेरे मनुष्यता के कर्तव्य क्या हैं ? मैं अपने जीवन के उन कर्तव्यो का पालन कर रहा हूँ अथवा नहीं ?' उसकी मनोदशा किकर्तव्य विमूढ जैसी बनी रहती है।

उसकी ऐसी मनोदशा इस कारण बनी रहती है कि उसके जीवन को अर्जित भावो ने घेर लिया है ओर वे अर्जित भाव प्रबल रूप से उसको अपने अनुशासन मे चलाते हैं। कभी–कभी सम्यकदृष्टि आत्मा भी ऐसे भावो मे बह जाती है। वह सोच भी नहीं पाती कि कौनसा कार्य किस दृष्टि से किया जा रहा है? वह इन भावो के अधीन हो जाता है। आत्मा की ऐसी परवशता उसकी अपनी क्रियाशीलता

को शिथिल बना देती है। ऐसा व्यक्ति विचारो के वशीभूत होकर नहीं, लेकिन इन अहकार आदि वृत्तियो से परवश होकर कुछ का कुछ कर बैठता है।

इस परवशता का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत होता है। कई बार यह परवशता मादक पदार्थो एव मादक वृत्तियो के कारण पैदा होती है। मादकता तो बहुत ही घटिया किस्म की परवशता होती है लेकिन बहुत बार सभ्य तरीके की परवशता भी मानव को अपने अधीन बना लेती है। यह अधीनता भी ऐसी विकट होती है कि स्वय की छवि का कही ठौर ठिकाना नही रहता। ऐसी मतिभ्रम आत्मा मिथ्यात्व के बन्धन मे प्रगाढ रूप से बँध जाती है।

दशार्णभद्र का आत्म-समीक्षण

आज की बात छोडिये जब अतीत के ऐतिहासिक पृष्ठो को उलटते है तो उस समय के जन–जीवन और जन–नायको के जीवन का स्वरूप भी आश्चर्य मे डालने वाला दिखाई देता है। महावीर प्रभु के समय मे भी ऐसी परवशता की स्थिति उनके किन्ही भक्तो मे दिखाई देती थी– यह अधिक आश्चर्य भरा तथ्य है। जिस मण्डल या जनपद मे तीर्थंकर देव विहार करते थे, वहाँ उनके तप–त्याग का प्रभाव पडता था और कई भव्य जन परवशता की स्थिति से मुक्त भी होते थे। लोग वीतराग देवो के दिव्य जीवन के दिव्य प्रकाश मे निज स्वरूप के समीक्षण की जिज्ञासा के साथ चले–यह तो प्रमाद के अनुरूप स्थिति होती है लेकिन आत्मिक समीक्षण के साथ–साथ यदि बाह्य पदार्थो के ममत्व का वायुमण्डल भी प्रभावक बना रहे तो वह समुचित प्रतीत नही होता है।

यह सत्य है कि बाह्य पदार्थो के ममत्व का वायुमण्डल ात्मिक अनुभूति को शिथिल एव सज्ञा–शून्य बनाकर विकृति से षित कर देता है। कई बार भगवान् का भक्त तक भी नही समझ ाता कि उसके जीवन की गति विकृति की तरफ जा रही है और

उसके जीवन मे विकृति फैलती चली जाती है। स्वय विकृत व्यक्ति अपने आपको विकृत नही मानता–यही आत्मा की विभावगत अवस्था है। उस विकृति को दूसरे विवेकशील पुरूष देखते है और उसको बताते हैं तथापि विकृत मानस की उस बेहोशी मे विरलो को ही होश आता है और वे अपनी विकृति को समझकर उसको दूर करने का उपाय करते हैं।

इसके लिये एक ऐतिहासिक प्रसग का उदाहरण लीजिए, जिसके माध्यम से यह सत्य स्पष्ट हो जायेगा कि अहकार सर्वथा हटता है तभी भीतर के 'अह' की यथार्थ अनुभूति हो सकती है।

प्राचीनकाल मे दशार्णभद्र नाम के एक बहुत बडे सम्राट् राज्य कतरे थे। उनके पास अपार वैभव था तो नैतिकता की प्रचुरता भी थी। जन–मानस मे यही प्रचलित था कि सम्राट् एक धार्मिक नरेश है। वे महावीर प्रभु के भक्त थे, इसलिये उनका चिन्तन ज्ञानपिपासु, सम्यक्दृष्टि आत्मा के अनुरूप था। उनके चिन्तन मे भौतिकता और आध्यात्मिकता का भेद स्पष्ट था तथा वे मानते थे कि मेरा यह प्राप्त वैभव पराया है। मेरा अपना तो आत्म रूप है, वह निखरता रहना चाहिये। उनकी धारणा यह भी थी कि आसक्ति घटनी चाहिये और राग–द्वेष से दूर रहने वाली भावना का विकास होना चाहिये। एक बार भगवान् महावीर का उनकी राजधानी मे आगमन हुआ। उनकी अन्तर अभिलाषा हुई कि प्रभु के दर्शन करने के लिये चला जावे।

सम्राट् ने इस प्रकार के भावो की एक आज्ञा प्रसारित की कि जो भी प्रभु के दर्शनो का अभिलाषी हो वह मेरे साथ चले। यह आज्ञा प्रसारित होते ही भावनाओ से प्रेरित होकर नगर जन राजप्रासाद के बाहर एकत्रित होने लगे। लोगो मे अपूर्व उत्साह जाग उठा कि इस चतुर्गति ससार के मूल राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारो पर विजय प्राप्त करने वाले चक्रवर्तियो के चक्रवर्ती प्रभु महावीर यहॉ पधारे है, उनके दर्शनो से हृदय मे जलने वाली कषायो की ज्वालाऍ मन्द होगी और उनकी अमृत तुल्य वाणी का रसास्वादन मिलेगा।

जुलूस तैयार होने लगा। चतुरगिणी सेना सजाकर सम्राट् तथा नागरिको ने नगर से प्रस्थान किया।

समीक्षण की उज्ज्वल धारा

इतने वैभव के साथ जब दशार्णभद्र सम्राट् उस उद्यान की तरफ चले, जहॉ महावीर प्रभु विराज रहे थे तो उनके मन के अर्जित भाव उभरकर ऊपर आने लगे—मेरे समान गौरव वाला दूसरा कोई सम्राट् इस ससार मे नहीं है। उनके मन मे अहकार वृत्ति जागकर गहरी होने लगी। अपने वैभव का गर्व उनके भावो मे समा गया। अहकार के इस भाव ने उस समय उनके विवेक को, उनकी आध्यात्मिक चेतना को शिथिल सा बना दिया। यह उनका अर्जित भाव था, क्योकि जब वे जन्मे तब अहकार की ऐसी स्थिति नही थी। वैभव मिला तो वैभव का गर्व बढा और उसके साथ अहकार बढा। वही दबा हुआ अहकार अपने उस वैभव को देखकर भडक उठा।

वैभव से गर्व होने के सबध मे महावीर प्रभु ने उल्लेख किया है—

"दडाण सल्लाण च गारवाण च तिह तिह।
जे भिक्खू चयई णिच्च, सेन अच्छइ मडले।।"

अर्थात् जिसमे तीन दड, तीन शल्य और तीन गौरव, ऋद्धि का गर्व अथवा अभिमान आ जाता है, उसको समुच्चय मे अहकार कह सकते हैं। बाहरी तत्त्वो पर अहकार करना और बाहरी वैभव पर मदाध बनना—यह अपने आत्मिक स्वरूप को भुलाना है। यह बेहोशी का प्रसग है। इसे एक तरह से सभ्य बेहोशी कह सकते हैं। यह मदिरा की तरह बाहरी बेहोशी नही होती है। दुनिया को लगता है कि व्यक्ति पूर्ण चेतना मे चल रहा है। किन्तु इसमे आत्मा की बेहोशी होती है।

सम्राट् दशार्णभद्र की भी ऐसी ही स्थिति हो गई। यद्यपि वे जानते थे कि प्रभु के समवशरण मे सभी प्राणी समान होते हैं और वे

उनकी वाणी से प्रभावित होगे, फिर भी मनोभावो मे अहकार रम गया प्रभु के समवशरण का अपूर्व प्रभाव बताया गया है कि जहॉ पहुॅच कर सिह और बकरी भी अपना जन्मजात वैर भूल जाते हैं और सभी शान्ति तथा आनन्द के अनुभव से मुग्ध बन जाते हैं। वहॉ की विराट् अहिसा का व्यापक स्वरूप सभी को आध्यात्मिक भाव की प्रेरणा देता है। जहॉ अहिसा की परम प्रतिष्ठा होती है वहॉ वैर कैसे टिका रह सकता है? पतजलि योग दर्शन मे एक सूत्र आया है।

"अहिसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैर त्याग।"

इस प्रकार समवशरण की रचना के प्रभाव और स्वरूप पर सम्राट् चितन करता कि प्रभु के समवशरण मे मानसिक अन्याय वृत्तियॉ तो क्या जन्मजात की विरोधी क्रूरतम वृत्तियॉ भी समाहित हो जाती हैं। ऐसा जन्मजात विरोध रखने वाले प्राणी स्वय श्रद्धा मे इतने ओतप्रोत हो जाते हैं कि जिससे अहकार आदि की वृत्तियॉ तो दूर रही, हिसक वृत्तियॉ भी अपना मुख विस्फारित नही कर सकती। वैसी श्रद्धा की स्मृति यदि दशार्णभद्र समाट् की हो जाती तो वह बाह्य वैभव की अहकार वृत्ति से ओतप्रोत नहीं होता। उसे उस अहकार वृत्ति के आवरण मे आतरिक सही श्रद्धा का भी विज्ञान नहीं रहा। क्योकि उसने अपने अन्दर का समीक्षण करना छोड बाह्य वैभव के अवलोकन मे ही अन्तर के प्रभाव को मोड दिया ऐसे परम भक्त श्रद्धालु पुरूषो पर भी अहवृत्ति अपना साम्राज्य स्थापित कर सकती है तो वह वृत्ति एक दृष्टि से क्रूर हिसक वृत्तियो से भी प्रबल साबित हो जाती है।

सम्राट् के अन्तर्मन मे भी ऐसी ही कुछ वृत्ति काम करने लगी, जिसका उनको भी भान नही हुआ। इसलिये अहकार को चित्त मे लिये वे आगे बढ गये। प्रभु के समीप जाते–जाते उनका चिन्तन ऐसा बना कि क्या कभी मेरे जैसी अपूर्व ऋद्धि के साथ कोई भी भक्त दर्शन करने के लिये आया होगा? मैं ही प्रभु का ऐसा पहला भक्त होऊगा जो इतने वैभव के साथ उनके गौरव को बढा रहा हूॅ। मै प्रभु की प्रतिष्ठा को चमका रहा हूॅ।

अहकार वृत्ति का ऐसा उभार सम्राट् के मन मे हुआ। सोचिये कि धार्मिक क्षेत्र मे आकर भी कोई ऐसा अहकार करे तो वह कैसा अहकार कहा जायेगा? प्रभु तो सर्वज्ञ थे-- वे अपने ज्ञान मे सम्राट के मन को देख रहे थे। किन्तु साथ ही वे वीतराग थे, अत निर्लिप्त थे। जब प्रसग आता तो अहकारी के अहकार को मिटाने के लिये वे प्रतिबोध देते।

इन्द्र का चमत्कार - सम्राट का अहंकार

लेकिन उसी समय इन्द्र भी प्रभु के दर्शन करने के लिये वहाँ पहुँचा। देवराज इन्द्र भी प्रभु का भक्त था। वीतराग प्रभु के भक्त कौन नहीं होते? जितने ससार मे भव्य जन हैं और जो अपने आत्म--कल्याण के अभिलाषी है, वे सभी वीतराग की भक्ति करते है। इन्द्र मे मति, श्रुत ज्ञान के अतिरिक्त अवधि ज्ञान भी होता है। इन्द्र ने दशार्णभद्र के वैभव को भी देखा और उसके मनोगत भावो को भी समझा। उसके मन मे विचार आया कि सम्राट प्रभु का अनन्य भक्त होते हुए भी मन मे यह अभिमान क्यो करता है? अर्थात् सोने की थाली मे यह अहकार रूपी ताबे की कील क्यो? इन्द्र ने निश्चय किया की सम्राट् का गर्व मिटाकर सोने की थाली मे से ताबे की कील निकाल देनी चाहिये।

सम्यक दृष्टि आत्मा का यह लक्षण होता है कि किसी के पैर मे से काटा भी निकालना हो तो उसका ध्यान रहता है कि उस काटे को निकालने मे भी उसको कष्ट न हो। इन्द्र भी सम्यक दृष्टि वाला था। उसने सोचा कि दशार्णभद्र सम्राट् के मन मे वैसे तो पवित्रता है, किन्तु यह अहकार रूपी काटा लगा हुआ है, जिसको निकाले बिना इनको 'अह' की आत्म स्वरूप की वास्तविक अनुभूति नही हो सकेगी। यह अहकार अपनी आत्मा के आतरिक भावो को भुलाने वाला काटा है। सम्राट् के गोरव को बनाये रखते हुए इन्द्र ने उनके झुके अहकार को दूर करने का उपाय सोच लिया।

दशार्णभद्र सम्राट् प्रभु के शमवशरण से कुछ ही दूरी पर थे कि इन्द्र ने अपनी वैक्रिय लब्धि से 64000 हाथी बना दिये। सम्राट् के पास थे केवल 5000 हाथी। लेकिन इन्द्र के हाथी कोई साधारण हाथी नही थे। हाथी ऐसे दिव्य कि एक–एक हाथी के आठ–आठ सूँड और एक–एक सूँड पर आठ–आठ दतशूल और एक–एक दत शुल पर जल वापियॉ (बावडियॉ)। एक–एक वापी मे आठ–आठ कमल खिले हुए, जिनमे से प्रत्येक कमल की लाख लाख पखुडिया। फिर यह दृश्य रचा कि एक एक कमल के बीच मे इन्द्र सिहासनासीन हैं। और एक–एक पखुडी पर एक–एक अप्सरा नृत्य कर रही है। ऊपर से देवो के झुण्ड के झुण्ड समवशरण की ओर नीचे उतर रहे हैं तथा प्रभु की जय–जयकार कर रहे हैं।

इस दिव्य दृश्य पर ज्योहि दशार्णभद्र की दृष्टि पडी, उसका अहकार एक ही पल मे पलायमान हो गया। वह अपनी ऋद्धि पर गर्व कर रहा था और प्रभु के गौरव को बढाने का क्षुद्र भाव ला रहा था। इस देव ऋद्धि के सामने उसकी समृद्धि व्यर्थ, धूल के बराबर भी नही। उसका गर्व चूर–चूर हो गया। वह समझ भी गया कि अहकार के पतन मे से उसे उबारने के लिये ही इन्द्र ने ऐसा किया होगा, किन्तु अपने अहकार का पूरा भान भी उसी समय हुआ। मेरा अहकार पराजीत हुआ यह जानकर उनका मन इन्द्र के प्रति आभार से भर उठा।

तब उनकी भाव धारा स्वस्थ बनी और समीक्षण बना कि मैं यहॉ इन बाहरी तत्वो पर अहकार करने लगा? ये क्या मेरे है? मुझे तो अपने आत्मिक स्वरूप को पहिचानना है। प्रभु की भव्य वाणी को जब मे आत्मसात् करूँगा तभी उस दिशा मे आगे बढ सकूँगा और उसी आत्म समीक्षण की उज्ज्वल धारा मे उन्होने पूर्ण त्याग का निश्चय किया, परिवार जनो से अनुमति मॉगी तथा प्रभु के सानिध्य मे जाकर वे दीक्षित बन गये। इन्द्र ने सोचा कि उच्चतर भौतिक वैभव को दिखाकर दशार्णभद्र के अहकारी मन को तो उसने पराजित कर

दिया, लेकिन आध्यात्मिक स्वरूप से आगे बढने की मुझमे क्षमता कहॉ है। वह इन्द्र, मुनि दशार्णभद्र के सामने नतमस्तक हो गया।

आत्म-समीक्षण-अहंविसर्जन

अहकार की वृत्ति हटती है, तभी अह याने आत्मा की सच्ची अनुभूति होती है। आत्मानुभूति होने पर ही आध्यात्मिकता जागती है और उच्चतम त्याग वृत्ति कर्मठता मे उतरती है। भगवान महावीर की भाषा मे वह ऐसा पडित बन जाता है जो एक-एक क्षण का समीक्षण कर लेता है। जो पडित पुरूष बनता है वह परपरा से अपने मन मे बैठे हुए अर्जित भावो का विवेकपूर्ण समीक्षण करता है तथा उन्हे सत् पुरूषार्थपूर्वक दूर करता है। तभी वहॉ आत्म भावो का प्रसार सभव बनता है। यह वस्तुत आतरिक समीक्षण के साथ पडित बनने का प्रसग है।

जब ऐसी आत्मिक अनुभूति जागृत होती है तो उसके माध्यम से सपूर्ण जीवन को सार्थक बना लिया जाता है। आप भी जरा सोचे कि क्या आप लोगो के लिये भी ऐसा अवसर है कि अहकार आदि कषाय वृत्ति को हटाकर आतरिक अनुभूति का समीक्षण किया जाये? अपने अत करण को प्रबल बनाइये तथा जीवन की वास्तविकता पर चितन कीजिए। सूक्ष्म काषायिक वृत्तियो को छोडे बिना आत्मिक स्वरूप का आकलन नहीं हो सकेगा। कषाये घटेगी तभी क्रियाए आध्यात्मिक स्वरूप ग्रहण कर सकेगी और उन आध्यात्मिक क्रियाओ के द्वारा ही आत्मानुभूति का सहज अवसर उपस्थित हो सकेगा। आत्म समीक्षण की महत्तम समुज्ज्वल साधना ही अहकार विसर्जन के साथ 'अह' आत्म स्वरूप के दर्शन रूपी मार्ग का सहारा बनती है।

□□

८. जीवन के रहस्यों का अनुसंधान बनाम दण्डत्रय समीक्षण

जीवन की गहनता का ज्ञान करने के लिये मानव मस्तिष्क के अन्दर भिन्न–भिन्न प्रकार का चिन्तन प्रतिक्षण, हर समय प्रेरणा के रूप मे चलता रहता है। अन्दर से सलग्न रूप, जो बाहर से दिखाई देने वाला रूप ही जीवन का समग्र रूप है, ऐसा जीवन के अन्तर्रहस्यो का आभास लेने वाले शोधको का विश्वास नही होता है। यह एक साधारण व्यक्ति का विश्वास हो सकता है कि वह इस बाहर दिखाई देने वाले जीवन को ही सब कुछ समझ ले। बाहर का दृश्य–यह एक स्थूल जगत का दृश्य है।

इसे हम अपनी सामान्य दृष्टि से देखते है। किन्तु जीवन के रहस्यो के परिज्ञान के लिये जिस दृष्टि की आवश्यकता है वह है–समीक्षण दृष्टि।

रात्रि के समय नीद मे जब मानव–मन स्वप्न मे गोते लगाता है, उस समय वह दृश्य जगत के भी कुछ स्वप्न देखता है, उस समय उन दृश्यो को सही मानता है। उसे देखकर सोचता है कि वह जो कर रहा है, वह या तो सही है या गलत है, लेकिन जैसे ही निद्रा भग होती है, उसका स्वप्न उसके लिये रस रहित हो जाता है। उस स्वप्न का रग उड जाता है। अधिकाशत वह उस स्वप्न को भूल जाता है। वह जागृत अवस्था मे उस पूरे के पूरे स्वप्न को स्मृति पटल पर लाने मे असमर्थ हो जाता है। जैसा उस स्वप्न का क्षण भगुर रूप होता है, आपेक्षिक दृष्टि से उस स्थूल जगत के दृश्यो का भी वही क्षणभगुर स्वरूप होता है।

मनोवृत्तियों का मानक्–समीक्षण

स्थूल जगत के दृश्यो मे उलझाने वाला अथवा जीवन के अन्तर्रहस्यो मे रमण कराने वाला मनुष्य का मन होता है। मनुष्य

के इस मन की गति का क्या कहना? मन कहॉ–कहॉ गति करता है और कहॉ–कहॉ गति कर सकता है इसके सामर्थ्य का कोई स्थूल मानदण्ड नही है। सबसे बडी बात तो यह है कि यह मन अपने ही धारक को कहॉ–कहॉ और किस–किस गति से दण्ड देता रहता है, और यही मन सध जाये तो मनुष्य को विकास की सर्वोच्च ऊँचाइयो तक लेकर चला जाता है। उसका भी कोई स्थूल पैमाना नही है। मन के कार्यकलापो अथवा इसकी चक्रव्यूह मय क्रियाओ का मापक यन्त्र केवल समीक्षण ध्यान ही है। समीक्षण ध्यान की सवैधानिक प्रक्रियाओ के द्वारा एक ओर हम मन की सूक्ष्म गतिविधियो को पकडते है तो दूसरी ओर जगत के सूक्ष्म रहस्यो के ज्ञाता बन, क्षणभगुर स्थूल पदार्थो से अलग हट जाते हैं।

जीवन के रहस्यों का अनुसंधान

मनुष्य का मन ही वह सशक्त माध्यम है जिसकी सहायता से जीवन के रहस्यो का अनुसधान किया जा सकता है। आवश्यकता यह है कि मन की गति स्थूल जगत के दृश्यो से आगे और गहरे मे बढे। स्थूल जगत के दृश्यो को स्वप्न की उपमा दी गई है। लेकिन इसका यह मतलब नही कि यह दिखाई देने वाला जगत् मिथ्या है। इस कथन का तात्पर्य इतना ही है कि यह स्थूल जगत ही सब कुछ है–यह कथन मिथ्या है। वस्तुस्थिति यह है कि यह दृश्य जगत भी है और इसके अन्त स्थल पर अन्तर्जगत भी है–स्थूल जगत भी है और सूक्ष्म जगत भी है। सूक्ष्म जगत क्या और कैसा है–यह जिज्ञासा तथा शोध का विषय है, और इसी जिज्ञासा तथा शोध वृत्ति को पकडकर जीवन के अन्तर्रहस्यो का अनुसधान करना समीक्षण ध्यान का अभिप्रेत है।

जीवन के रहस्यो का अनुसधान करने की जिज्ञासा रखने वाले भव्यो का जीवन निश्चित ही तथ्य एव अर्थपूर्ण होता है। वे इस सूक्ष्म जगत् मे प्रवेश करते हैं तथा अनुसधान करते हुए आगे से आगे बढते जाते है। ज्यो–ज्यो उनका अनुसधान गहन बनता जाता है,

वे इस दृश्य से अदृश्य की ओर–स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर गति करने लगते है। तब उनका अन्वेषण मार्मिक बन जाता है और शाश्वत सत्य के समीप जाने लगता है। उस अवस्थान मे वे स्वप्न सम स्थूल जगत से परे हटकर परम सत्य का वरण कर सकते है। उनका अनुसधान उस समय सफलता के स्तर तक पहुँच जाता है। ऐसे परम सत्य का वरण करने की क्षमता जिस जीवन मे प्राप्त होती है वही जीवन सार्थक होता है तथा उसके साथ ही इस मानव तन की भी सार्थकता मानी जाती है। इस सार्थकता की प्राप्ति करने का माध्यम है मन, वह मन जो आत्मा और शरीर की कडी के रूप मे रहा हुआ है।

एक व्यक्ति अपने किसी वाहन–कार आदि से जब लम्बी यात्रा पर निकलने का विचार करता है तो पहले वाहन की क्षमता तथा सुघडता की जॉच कर लेता है। उसे उस यात्रा के योग्य बना लेता है। इस तैयारी के साथ वह अपनी यात्रा सफलतापूर्वक पूरी कर सकता है। अगर वह ऐसी जॉच के बिना ही विवेकहीन होकर चल पडता है तो हो सकता है कि उसको उस वाहन की वजह से यात्रा के दौरान भिन्न–भिन्न कष्टो को झेलना पडे और उन कष्टो के बावजूद उसकी यात्रा पूरी होने मे सन्देह रहता है। जीवन के अन्तर्रहस्यो की खोज मे भी जो चलता है, उसके लिये यह मन उस वाहन के समान है और जो मन को साधकर नही चलता, उसकी यात्रा की सफलता का कोई भरोसा नहीं रहता। मन की विवेकहीन गति को गति का नाम देना ही गलत होता है। जब मन साधे बिना गति करता है तो वह मनुष्य को कैसा–कैसा और कितना–कितना दण्ड दे सकता है, उसका वर्णन भयावह होता है।

अनुसंधान के सूत्र

भगवान की प्रार्थना की पक्तियॉ एव वीतराग वाणी रूप शास्त्र की गाथाओ मे वे विविध विधियॉ हैं जिनमे अनुसधान के सूत्र समाहित हैं। समीक्षण इस शब्द रचना की सार्थकता अनुसधान मे रही हुई है।

शब्द जरूर आप समझते हैं, सुनते है तथा उनका उच्चारण करते हैं, लेकिन उनके पीछे क्या गूढ अर्थ है, उसे आप बिना-अनुसधान के नहीं जान सकते हैं। उस गूढ अर्थ का ज्ञान ही मनुष्य को सूक्ष्म जगत् की ओर गतिशील बनाता है।

समीक्षण ध्यान के रूप मे आध्यात्मिक शक्ति के विविध स्वरूप का जिस विधि से इस साधन विधि मे वर्णन किया गया है, वह अन्त करण की जिज्ञासा का द्योतक है। इसी कारण वह जीवन की गहनता का भी आभास दिलाने वाला है। एक विकासोन्मुख मनुष्य की जिज्ञासा और इच्छा रहती है कि यह भी आध्यात्मिक शक्ति की परमोच्चता को प्राप्त करे। साधना की दृष्टि से वह प्रयास भी करता है, पर उसका प्रयास सामान्यतया सफल नही रहता है, क्योकि वह विपरीत मार्ग पकड लेता है।

आज बारीकी से देखे तो सर्वत्र मूल मे भूल चल रही है। आज का मानव इस स्थिति को गम्भीरता से नही देखता कि प्रयत्न उसको किस लिये करना चाहिये तथा वह किस लिये कर रहा है ? यदि उसे परम सत्य को पाना है तो उसकी शोध के लिये इस जीवन का समर्पण करना होगा, बाह्य जीवन की समग्र वृत्तियो को उस दिशा मे मोडना होगा तथा समस्त गतिविधियो को समीक्षण ध्यान के द्वारा तदनुसार ढालना होगा। परम सत्य की प्राप्ति के लिये इन सब कार्यो को अभीष्ट मानकर चलना होगा। इसके बिना इस जीवन मे कभी भी उस परम सत्य के दर्शन नहीं हो सकते हैं।

महावीर प्रभु ने अपने उस आन्तरिक जीवन की अनुभूति का प्रकटीकरण जिन शब्दो मे किया हे, वे शास्त्र रूप मे मानव समाज के समक्ष विद्यमान हैं। उन्होने अर्थ रूप मे जो प्रकट किया, वह बाद मे शब्दो की रचना मे गणधरो द्वारा गूँथा गया। उस शब्द रचना को आज उच्चारण मे लेकर अनुसधान के क्षेत्र मे प्रवेश किया जा सकता है। वह वीतराग वाणी है ओर उसमे ज्ञान, दर्शन ओर चारित्र की जो विधिया बताई गई हैं, उन्ही सूत्रो के सहारे सफल अनुसधान कर

सकते है।

मन की विपरीत गति से दण्ड

प्रभु महावीर ने अपनी देशना मे स्पष्ट उद्घोष किया हे कि यह आत्मा सत्य वस्तुस्थिति को प्राप्त नहीं करके स्वय को दण्डित कर रही है। अर्थात् स्वय के ऊपर स्वय प्रहार कर रही है। यह मन विपरीत दिशा मे गति करता है और वह उस गति के द्वारा अपने को ही दण्डित कर रहा है तथा उस दण्ड का सब ओर प्रहार करता रहता है। जब किसी व्यक्ति का अपने मस्तिष्क पर कोई नियन्त्रण नही हो तो उसको इस बात का भान नही रहता कि वह अपना ही डडा उठाकर खुद को ही पीटने लग जाता है ऐसे व्यक्ति को तो आप अपने सामने देखकर पागल कह देते है, लेकिन इसी आधार पर आप अपने मन की गति की समीक्षा करे ओर उसके कार्यो की सही आलोचना करे तो हो सकता है कि वह बाहर का पागल आपको बहुत कम पागल लगे।

जो व्यक्ति स्वय के डडे से स्वय को ही पीटता है—स्वय ही दड ग्रहण करता है, उसको पागल की सज्ञा दी जाती है। यदि आप भगवान् महावीर की मूल वाणी का अनुसधान करे तो यह पागलपन किस पर घटित होता है इसका आपको पता चले। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये आत्मावलोकन एव चिन्तन का विषय है।

प्रभु महावीर ने तीन प्रकार के दण्ड बताये हे। मण दण्डे, वय दण्डे, काय दण्डे। इन दण्डो के प्रयोग से यह आत्मा स्वय को दण्डित कर रही है। आप सोचेगे कि दण्ड तो सरकार के नियत्रण मे है, न्यायाधीश निर्णय सुनाता है, अपराधी को दण्ड भुगताया जाता हे। यह दण्ड स्थूल दृष्टि का दण्ड होता है— बाह्य व्यवस्था का दण्ड है। यदि यहॉ पर भी आप कुछ बारीकी से देखेगे तो आप जान सकेगे कि न्यायाधीश को दण्ड क्या देना पडता हे। दण्ड पाने की तैयारी स्वय व्यक्ति करता है याने कि वह जानते हुए भी ऐसा दण्डनीय

अपराध करता हे, जिसके कारण न्यायाधीश को उसे दण्ड देना पडता है। दण्ड ग्रहण करने की क्रिया आपराधिक प्रवृत्तियो द्वारा स्वय व्यक्ति अपने लिये बनाता है। इस दृष्टि से माने तो यह कहना पडेगा कि व्यक्ति स्वय दण्ड ले रहा है। किन्तु स्वय दण्ड लेते हुए भी उस तथ्य को वह मानता नही, और समझता है कि उसे दण्ड दिया जा रहा है। यदि इस तथ्य को भी वह समझने और न्यायाधीश के समक्ष अपने अन्त करण से उस दण्ड को लेने की तत्परता बतादे तो शायद दण्ड माफ भी कर दिया जाय, जिसे हम आगमिक भाषा मे आलोचना या पश्चाताप करना कहते है और वह पश्चाताप है मनोवृत्तियो का समीक्षण।

बाहरी दण्ड की व्यवस्था भी इसी कारण होती है कि व्यक्ति स्वय के दण्ड को सही विधि से स्वय नही ले पाता है। इसलिये व्यवस्था की दृष्टि से उसको दण्ड दिया जाता है। यह दण्ड की परिभाषा तथा उसका व्यवहार अलग-अलग है। शास्त्रो मे जो दण्ड बताया गया है, वह आत्मा की स्वय की दुष्प्रवृत्ति को राकने के रूप मे होता है। दण्ड मिलता अवश्य है चाहे वह आत्मा के स्वय के विवेक से मिले अथवा प्रकृति से। इतना अवश्य है कि स्वय अपने अपराध की आलोचना करके उसका अन्त करण से योग्य गुरू द्वारा दण्ड ग्रहण करता है तो आत्मस्वरूप का परिष्कार होता है।

दण्डों का वर्गीकरण और उनका समीक्षण

आत्मा की स्वय की दुष्प्रवृत्ति के कारण स्वय उसको जो दण्ड भोगना पडता हे, उसको तीन भागो मे वर्गीकृत किया गया है, वे तीन विभाग हे- मन दण्ड, वचन दण्ड और काय दण्ड। इसमे मूल भूमिका मन की होती हे ओर मन के अशुभ विचारो का दण्ड वचन तथा शरीर को भी भुगतना पडता हे क्योकि वाणी एव व्यवहार पर मुख्यत मन के ही विचारो का प्रभाव पडता है।

प्रारभिक रूप मे व्यक्ति मन से अपनी आत्मा को दूषित बनाता है अर्थात् मन ही आत्मा को बुरे कार्यो मे प्रवृत्ति कराता है। वही दुष्कर्म की स्थिति मे उसे नरकादि दुर्गतियो मे ले जाता है। यह जो मन के दण्ड की स्थिति है, यह एक दृष्टि से स्वय आत्मा की ही अवस्था है। मन सब व्यक्तियो के पास होता है। इस दृश्यमान शरीर के भीतर मन का अवस्थान होता है और आत्मा भी इस शरीर के भीतर होती है। जितने हिस्से मे आत्मा रह रही है, उतने ही हिस्से मे मन रह रहा है। जितने हिस्से मे आत्मा और मन हैं, उतने ही हिस्से मे आपका यह शरीर दीख रहा है। इस शरीर मे रहता हुआ यह मन जब बुरे सकल्प करता है, बुरा चितन करता है तो उस बुरे चितन के साथ वह स्वय उलझता है और इस आत्मा को भी उलझन मे डालकर उसे बुरे कार्य मे लगवाकर दण्ड का भोग करवाता है। ऐसे 24 दण्डक हैं। दण्डका अर्थ है– जहॉ आत्मा दण्ड का भोग करे। आप सोचे कि एक व्यक्ति शाति से बैठा हुआ है, लेकिन जब वह दूसरे बाहर के व्यक्तियो को देखता है– किन्ही दो व्यक्तियो की कुछ स्नेह भावना का दृश्य उसके सामने आता है तो वह सोचता है कि इन दोनो व्यक्तियो मे इतना स्नेह क्यो है? मेरे साथ तो किसी का स्नेह नही है, इन दोनो मे आपस मे इतना स्नेह है तो इसको तुडवा देना चाहिये। तब वह अपने मन मे ताना–बाना बुनता है और उन व्यक्तियो के स्नेह को तोडने के लिये जाल रचता है। उनके स्नेह के विरूद्ध वह एक दूसरे को इधर–उधर की बातो से भिडाता है। ऐसी बाते करता है जिनको आप अपनी भाषा मे नारद विद्या कहते है। इसमे वह आदमी कभी–कभी सफल हो जाता है। जिस व्यक्ति के सामने जाकर उसकी मन मे जमने वाली बात कहता है, वह उसके चक्कर मे आ जाता है। भिडाने वाला व्यक्ति इससे खुश होता है मगर यह नही समझता कि वह अपनी ही आत्मा को धोखा दे रहा है। दूसरे व्यक्ति लडेगे या नही लेकिन उसने स्वय अपने अदर द्वन्द्वात्मक सघर्ष करने की दुष्प्रवृत्ति को जन्म देकर कर्म बधन कर ही लिया। उसका दण्ड तो उसको भोगना ही

पडेगा। ऐसी होती है मन के सकल्प–विकल्पो की भूमिका– जिसके आधार पर मन, वचन और काया तीनो दुष्प्रवृत्तियो मे सलग्न होते हैं तथा उन दुष्प्रवृत्तियो का दण्ड भुगतते है। मूल मे ये तीनो इसी आत्मा के अग होते है। अत वास्तव मे तो यह सारा दण्ड इसी आत्मा को इसी जन्म या आगामी जन्मो मे भुगतना पडता है।

दण्ड की यह प्रक्रिया उभयमुखी होती है– दण्ड निर्माण एव दण्ड भुगतान। मानसिक, वाचिक एव कायिक क्रियाए स्वय आत्मा के लिये दण्ड का निर्माण करती है और वही दण्ड का भुगतान करती है अर्थात् मन, वाणी और शरीर पर ही हमारे कर्मो का प्रभाव होता है। कर्म बधन एव कर्म–फल भोग की अन्तर्दृष्टि से समझ लेना कर्म–समीक्षण अथवा दण्ड समीक्षण कहलाता है। इस रूप मे समीक्षण ध्यान साधना कर्मबधन से मुक्ति दिलाने की एक सुगमतम किन्तु महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। दण्डो का समीक्षण और उनके परिणामो का समीक्षण हमे दण्डो से बचाने हेतु उत्प्रेरित करता है।

बन्ध और मोक्ष का कारण : मन

दार्शनिक भूमिका पर मन का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि –

मन एव मनुष्याणा, कारण बध–मोक्षयो ।

मुख्यतया मन ही मनुष्यो के कर्मबध एव कर्मक्षय का कारण होता है। इस मन की प्रवृत्ति से मनुष्य अपने जीवन को कर्मो से कुत्सित बनाता है। अपने लिये नये–नये कष्ट खडे करता है ओर अपने आपको बरबाद करता है। यह मन इतना बडा दण्ड है कि जिसकी समानता की कल्पना भी नही की जा सकती है। अपनी अशुभ प्रवृत्तियो के सदर्भ मे वह यह सोचता है कि वर्तमान मे मेरा कार्य ठीक चल रहा है और ऐसा कार्य हो रहा है जिससे मेरा कुछ नहीं बिगड सकता। लेकिन वह भविष्य को नही देखता। वह यह

भूल जाता है कि उसने अपनी करणी से अपना सबकुछ बिगाड लिया है। पूर्व की पुण्यवानी का उदय होता है तब तक सारी खुशहाली दिखाई देती है, लेकिन जिस वक्त यह पुण्यवानी समाप्त हो जायेगी, तब मन, वचन और काया दण्ड रूप बनकर इस आत्मा को दु खित बना देगे। उस दशा का ज्ञान यदि आज कर लिया जाये तो यह कष्ट–निरोधक बन सकता है। वरना जब कष्ट भुगतना पडेगा तब तो उसे समझ आयेगी ही। कहावत है– "प्रकृति मे देर है, लेकिन अन्धेर नहीं है।" अपनी पाप प्रवृत्तियो से सरकार की निगाह से बचा जा सकता है लेकिन कुदरत की निगाह से नही बचा जा सकता। कर्मो की स्थिति बडी विचित्र होती है। कर्म अपनी विचित्र दशा से आत्मा को दण्डित करते रहते हैं। जिस क्षण भी विचार करे तो आपको यह प्रतीत होगा कि मन भिन्न–भिन्न विषयो मे उलझता जाता है और शनै–शनै अशुभ कर्मो का बोझ आत्मा पर बढता जाता है। जहॉ तक मन के ये बाहर के ताने–बाने चलते रहते है, वहॉ तक जीवन के अन्तर्रहस्यो का समीक्षण कठिन ही बना रहता है। भीतरी जीवन को न पा सकना–यह आत्मा के लिये सबसे बडा दण्ड होता है। बाहर के दृश्यो मे उलझे रहना–यह आत्मा का पागलपन माना जाता है। दुनिया की दृष्टि मे कोई व्यक्ति बडा होशियार और योग्य हो सकता है। किन्तु उसका अगर भीतरी जीवन मे प्रवेश नही है तो आत्मा की दृष्टि से वह पागल ही कहलायेगा। यह ज्ञानीजनो की दृष्टि है। शास्त्रकारो ने ऐसे व्यक्ति को बाल कहा है। शरीर की दृष्टि से वह बडा हो सकता है, लेकिन मनोवृत्ति की दृष्टि से वह नादान है। नादानी मे व्यक्ति क्या नहीं करता है ? वह अपने अमूल्य जीवन को निरर्थक बना लेता है। यही नादानी उसे ससार–चक्र मे परिभ्रमण कराती है।

मन जैसे कर्म–बन्धन मे कारण भूत होता है, वैसे ही उसे कर्म–क्षय का कारण भी बनाया जा सकता है। कर्मो से छुटकारा दिलाने वाला भी यही मन होता है। अगर मन के सकल्पो को शुभता मे ढाल ले और उसकी गतिविधि को समीक्षण की प्रक्रिया से व्यवस्थित वनाले तो वे मन की दिशा को वदल सकती है। आगमवाणी हे–

"मणो साहसिओ भीमो " मन एक घोडे के समान है। जैसे किसी घोडे की लगाम ढीली है तो वह रास्ते से भटक जाता है और सवार को खाई–खड्डो मे गिरा देता है। किन्तु उसकी लगाम सवार के हाथ मे हो तो वह बराबर रास्ते पर चलता रहेगा। तेज चाल से चलता रहेगा और गन्तव्य स्थान पर समय व सुविधा से पहुँचा देगा। उसी प्रकार मन रूपी घोडे को अपने अधीन बनाकर चलने की बात बहुत बडी उपलब्धि होती है और वह होगी समीक्षण की प्रक्रिया से।

मन की गति को व्यवस्थित बनाने के लिये पहला काम यह करे कि वह गलत रास्ते पर या ऊबड–खाबड मे चलना बन्द करे। पहले पहल वह सही रास्ते पर नही चल सके तो कोई बात नहीं। जब वह गलत मार्ग पर गति करना छोड देगा, तो तब उसको सही मार्ग पर लाने मे कोई कठिनाई नही होगी। अशुभत्व के प्रतिबन्ध के साथ ही समीक्षण की प्रक्रिया शुभत्व की ओर ले जाने मे सहायक बनेगी।

मन की विगति से मानसिक रोगों की उत्पत्ति

आधुनिक मनोवैज्ञानिक कहते है कि मन की विगति से कई प्रकार के मानसिक रोगो की उत्पत्ति होती है। ये मानसिक रोग रोगी के स्वय के जीवन के लिये घातक सिद्ध होते ही है। किन्तु उनके सक्रामक असर से समाज और राष्ट्र भी नही बचते हैं। ये रोग मन की शक्ति को और उसके साथ राष्ट्र की सस्कृति को क्षय रोग की तरह भी क्षत–विक्षत बना देते है।

मानसिक रोगो का प्रभाव छूत के रोगो की तरह फैलता है। हिस्टीरिया एक मानसिक रोग होता है। किसी व्यक्ति को हिस्टीरिया की बिमारी हो ओर पास मे कोई दूसरा कमजोर मन का व्यक्ति बैठा हुआ हो तो वह भी उस रोग से ग्रस्त हो जाता है। इसकी खोज करने वालो ने तो यहाँ तक लिखा है कि एक बहिन हिस्टीरिया की बीमार थी–उसे दौरे पड रहे थे। उसका इलाज कराने के लिये रेल से दूसरे स्थान पर उसे ले जा रहे थे। सीट पर–उसके पास मे ही आदिवासी

कन्या बैठी हुई थी। उस बहिन को दौरा पडा और उसकी दशा देखकर उस आदिवासी कन्या को भी दौरा पडना शुरू हो गया। इस प्रकार मानसिक रोगो की दशा मे मन की ग्रन्थियाँ उलझ जाती हैं। जिन पर नियन्त्रण कर पाने मे मनुष्य अक्षम बन जाता है।

मनोविज्ञान के क्षैत्र मे अनुसधान करने वाले लोगो ने कई विचित्र अनुसधान किये है। अधिकतर मन की विचारणा और धारणा मन के रोगो मे ही नही, शरीर के रोगो मे भी मुख्य रूप से प्रभावशाली होती हैं। मन की विगति को समझ जावे तथा उसको रोक दे तो मन और शरीर को कई रोगो से मुक्त रखा जा सकता है।

मैं अभी मन दण्ड की स्थिति का सक्षेप मे सकेत दे रहा हूँ। शास्त्रकारो के कथनानुसार मन को मन ही दण्ड देने वाला होता है। वस्तुत इसको आत्मा के अधीन चलना चाहिये। तभी इसकी नियत्रित अवस्था रहती है। मन की विगति का मुख्य कारण इसका आत्मा के ऊपर छा जाना है। आत्मा जब इस मन की अधीनता मे आ जाती है तो वह बेभान हो जाती है। उद्दण्ड मन के हाथो मे पडकर आत्मा अपने स्वरूप को विकृत बनाती है तथा इस लोक और परलोक को बिगाडती है। मानसिक रोग जीवन की मूल शक्ति को नष्ट करने वाले होते हैं। यदि इनकी चिकित्सा समुचित रूप से नही की जाती है तो ये जीवन के लिये भयावह सिद्ध होते है।

मनो निग्रह का उपाय समीक्षण ध्यान योग

मैं यह कहना चाहता हूँ कि इन्सान अभी कुछ क्षणो के लिए परलोक की बात को गौण करदे । महावीर प्रभु की वाणी के आधार पर जीवन को समझना चाहे और यह सोचे कि वर्तमान जीवन को सुखी बनाना है। परम आनन्द का अनुभव करना है तो वह वीतराग वाणी का प्रयोग इसी जीवन मे करके देखे। कई लोग यह समझते हैं कि ये केवल परलोक सम्बन्धी बाते है, तो वे पूरा अर्थ नही समझते हैं। मैं आपको जो कुछ बतला रहा हूँ वह परलोक की बात हे या इस लोक

की बात है? परलोक की बात तो मेरे मस्तिष्क मे है ही, किन्तु सही दृष्टि से सोचे तो वह परलोक इसी जीवन मे है। यदि आप वर्तमान जीवन को व्यवस्थित बना लेते है तो परलोक की श्रेष्ठता भी अर्जित कर लेते है। समीक्षण ध्यान साधना जिस सुघडता से वर्तमान जीवन को परिष्कृत करती है, वह परलोक को सहज ही मगलप्रद बना देती है। धर्म स्थान पर उपदेश और धार्मिक क्रियाओ का जितना भी वातावरण मिलता है, वह जीवन के अन्त स्तल को छूने वाला वर्तमान, भूत और भविष्यत् की, समग्र स्थितियो का परिष्कृत करने वाला है, वर्तमान को भव्य बनाने का सूक्ष्म सत्प्रयास है। मैं तो यहॉ तक कहने के लिये तैयार हूँ कि यदि आप वर्तमान जीवन को ही सब कुछ मान लेना चाहते है तथा भविष्य को भूल जाते है तो यह सोचले कि वर्तमान जीवन सब कुछ नही है। इससे आगे भी जीवन है। लेकिन उसकी नीव वर्तमान जीवन मे है। इसलिये वर्तमान जीवन पर आपकी पहली दृष्टि रहे–यह आवश्यक भी है और वाछनीय भी। इस दृष्टि से भी आप समीक्षण ध्यान–साधना के द्वारा मनोनिग्रह के उपाय कीजिये और उस मन की विगति को सुधारिये।

'हसन' एक बडा आदमी हो गया है। वह अपने आप को खुदा का बन्दा समझता था और उसका ख्याल था कि खुदा उसके मन की सभी इच्छाये पूरी करता है और उसको चाही गई जानकारी देता है। एक बार उसने खुदा से यह जानकारी चाही कि इस दुनिया मे सबसे बडा पापी कौन है ? वह प्रार्थना करके सो गया तो उसको सपने मे जवाब मिला कि उसके मकान के बाई तरफ का पडौसी ही दुनिया का सबसे बडा पापी है। उसे यह जवाब समझ मे नही आया, क्योकि वह पडौसी तो बडा भोला और शरीफ था। फिर उसने दूसरी जानकारी चाही कि सबसे बडा धर्मात्मा कौन है ? उसका भी जवाब सपने मे मिला कि दाई तरफ का चमार पडौसी सबसे बडा धर्मात्मा है। यह भी उसके समझ मे नहीं आया कि वह चमडे का काम करने वाला सबसे बडा धर्मात्मा कैसे हो सकता है। उसने दोनो जवाबो के लिये अपने असतोष की सफाई चाही तो फिर सपने मे उत्तर मिला कि दोनो

जवाब सही हैं– यह तुम्हारे मन की अग्राहकता है कि तुम समझ नही पा रहे हो। मन की उलझन को मिटाओ तो सही बात सही रूप मे समझ मे आएगी।

इस रूपक का अभिप्राय यह है कि जो मानसिक उलझनो मे उलझ जाता है और मनोवृत्तियो का समीक्षण नहीं करता है तो उन उलझनो मे उसकी आत्म प्रतीति मन्दी हो जाती है, वह अपने ही अन्तरग मे उठती आवाज को समझ नही पाता है। परमात्मा किसी जिज्ञासा का क्या उत्तर देगा– यह तो स्वय की – भीतर की आवाज होती है। यह आवाज उतनी ही सच्ची होगी जितनी आत्मा निर्मल और सक्षम होगी। आत्मा की निर्मलता और सक्षमता मनोनिग्रह की श्रेष्ठता पर आधारित होती है।

भीतर से जो उत्तर मिलता है, वह अन्तरात्मा का उत्तर होता है। परमात्मा कही बाहर नहीं है। वह आपके अपने ही भीतर है। उसको आपने दबा रखा है। उसके ऊपर आपने आवरण डाल दिये हैं। फिर भी वह पूरी तरह दबता नहीं है, छिपता नही है और समय समय पर आपको अपना आभास देता रहता है। यदि आप तल्लीनता से दृढ सकल्प पूर्वक समीक्षण प्रक्रिया के माध्यम से अपने अन्त करण को कुछ पूछे तो उसका सही उत्तर आपको मिलेगा। लेकिन इतनी गहराई मे कौन उतरे ? जो बाहर ही बाहर भटकते है, उन्हे भीतर प्रवेश का अवकाश कहाँ ? भीतर की गहराई मे उतरे तो आत्म–प्रतीति गहरी बन सकती है। इसके लिये वर्तमान जीवन पर प्रथम दृष्टि रखकर चले तो कोई आपत्ति नही है।

मन दण्ड का व्यापक प्रभाव

मन का दण्ड समग्र जीवन पर व्यापक प्रभाव डालता है। जब मन व्यवस्थित नही होता है तो मनुष्य अपने विचारो मे बडी परेशानी महसूस करता है। जब हर समय मानसिक तनाव की स्थिति रहती है तो वह अपने वचन के नियत्रण को भी खो देता है। वह ऊलजलूल

बोलता है तो उसका तनाव बढता जाता है। तब उस परेशानी मे वह नशा लेने लगता है। शराब, भग, गाजे आदि के नशो से वह वचन दण्ड से काया दण्ड पर उतरता है और अपने शरीर का नाश करता है। इस तरह मन का दण्ड समूचे जीवन का दण्ड हो जाता है। जो आत्मा के लिये कष्ट दायक बनता है।

गॉधीजी के उपदेशो के सन्दर्भ मे यह कहा जाता है कि नशाबन्दी होनी चाहिये। अब इस दिशा मे सरकार काफी आगे बढने की बात की सोच रही है। लेकिन आज नशे की वृद्धि भी जीवन के साथ जुड गई है। गॉधीजी ने विदेश जाते समय जैन सन्तो के सम्पर्क से मास नही खाने, मदिरा नही पीने और परस्त्री के सम्पर्क मे नहीं जाने की तीन प्रतिज्ञाये ली थी। किसी भी प्रतिज्ञा का पालन तभी हो सकता है जब उसके योग्य मन की तैयारी बन जाती है। सरकार कानून बनाकर नशाबन्दी कर सकती है। लेकिन कानून से मन की तैयारी तो नही करा सकती है। इसके लिये तो लोगो के मन को ही सुधारना और तैयार करना पडेगा और तभी वचन दण्ड और काय दण्ड से बचा जा सकता है।

जीवन का परिवर्तन बाहर से नही लादा जा सकता है– उसको तो समीक्षण की गभीर साधना से भीतर से ही पैदा करना पडेगा। यदि वास्तव मे नशाबन्दी करना है तो जन–जन के समीप जाकर उनकी मन स्थिति को परिमार्जित करना होगा, उन्हे वर्तमान जीवन के वास्तविक सुख का ज्ञान कराना होगा। यदि उनको मन से अनुभव करा देगे कि नशा अहितकर है, तो वे नशे को बिना कानून के भी छोड देगे। मै यह बताना चाहता हूँ कि नशाबन्दी के आन्दोलनकर्त्ताओ को पहले मानसिक परिवर्तन का आन्दोलन चलाना चाहिये। यदि लोगो को मन के दण्ड से बचा लेते है तो उनको उसके व्यापक कुप्रभाव से भी बचा लिया जा सकेगा। यह सब समीक्षण ध्यान साधना के रचनात्मक व्यापक प्रचार–प्रसार एव अनुशीलन के द्वारा सहज साध्य हो सकता है।

मन की उलझने मिटाइये, समीक्षण में रम जाइये

सारे रोगो की जड मन है, और यदि मन की सारी उलझने आप मिटा देते हैं तो जीवन की उन्नति का मार्ग साफ हो जाता है। मन की उलझने मिटेगी तो नया पाप कम होगा तथा पुराने पापो को धोने का विचार आयेगा। इस कार्य मे सन्तो का समागम एव समीक्षण का आयाम बहुत लाभदायक होगा। आप सन्तो को अपनी उलझने बतावे तो वे आपको उन्हे मिटाने के कारगर उपाय स्वय की मर्यादा मे बतायेगे। वे आपको तीनो प्रकार की दण्ड स्थिति समझायेगे और आपको अपने ही दण्ड से बचायेगे। सभी वर्गों तथा स्तरो के व्यक्ति एव साधक सन्तो से दिशा–निर्देश प्राप्त कर सकते है। समीक्षण ध्यान साधना कर सकते हैं।

धर्म स्थान पर किसी भी प्रकार की पूर्वाग्रह की जडता से आबद्ध होकर नही आवे। मन के ताला लगाकर नहीं आवे। यदि आप ऐसा पालन करते है तो मै सोचता हूँ कि आप अपने मन की उलझने मिटाकर स्वस्थ चिन्तन की प्रवृत्ति डाल सकते है। कोई यह सोचे कि महाराज मन के अनुकूल बोले वह सही और प्रतिकूल बोले वह गलत, तो ऐसे मन के गुलाम को तो भगवान् भी नही समझ सकते हैं। अगर आप अपने जीवन को समुन्नत बनाना चाहते हैं तो मन के गुलाम नही, मन के स्वामी बनिये और उसको अपनी आत्मा की अधीनता मे चलाइये। समीक्षण ध्यान को जीवन मे आन्तरिकता पूर्वक अपनाइये।

मन की गति को स्वस्थ बनाकर मन के दण्ड से अपने आपको बचा लेते हैं तो समझिये कि आप अपनी आत्मा को सशक्त बना लेगे। आत्मा के साथ मन , वचन और काया तीनो शक्तिशाली हो जायेगे। मानवीय जीवन की इस गहनता को समझने का सक्रिय साधन समीक्षण आपके सम्पूर्ण जीवन को आनन्द से भर देगा। □□

9. ज्ञान का ज्ञान : आत्म-समीक्षण

वर्तमान शासन नायक प्रभु महावीर ने जो अमृत सन्देश दिया वह जन–जन के जीवन को आनन्द से भरने वाला है, जन–जन के मन को आह्लादित करने वाला है। यदि जन–समुदाय इस सन्देश को हृदयगम करले, जीवन के आचरण के साथ जोड दे, जीवन के अणु–अणु मे उतार दे तो आज इस मानव तन मे रहता हुआ भी वह कुछ विलक्षण, अलौकिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अपने तनाव पूर्ण जीवन को शान्ति रस से भर सकता है।

प्रभु ने एकान्त एव स्थायी सुख पाने लिए पहला उपाय ज्ञान की अभिव्यक्ति से अधिक ज्ञान के समीक्षण के रुप मे बताया है, अर्थात् स्वय द्वारा स्वय के समीक्षण पर ही प्रभु ने सर्वाधिकार बल दिया है।

ज्ञान का समीक्षण

आप सोचेगे कि अन्य वस्तुओ को स्वय ज्ञान से जाना जाता है किन्तु ज्ञान को किससे जाना जाय ? यह समझने का विषय है–जब तक प्रभु के सिद्धान्तो का ज्ञान हृदयगम नहीं हो पायेगा।

जिन माध्यमो से अथवा जिन तौर तरीको से अन्य पदार्थो का ज्ञान किया जाता है उनके अतिरिक्त एक माध्यम इतना विशिष्ट है जिससे ज्ञान का ज्ञान भी किया जा सकता है। ज्ञान विषयी होता है। अन्य पदार्थ विषय होते है। पर जिस समय ज्ञान को विषय बनाया जाय और विषयी वह विशिष्ट ज्ञान हो उस वक्त की घडियॉ, उस समय का स्वरुप कुछ अलग ही होता है। वह जीवन–वेला कितनी शान्त, प्रशान्त वन सकती है, इसका कथन शब्दो से नहीं किया जा सकता। वह तो अनुभूति का ही विषय है।

मानव अपने चारो ओर निगाह डाल कर अपने सदृश तत्व

को देखने की कोशिश करता है। मनुष्य जहाँ भी पहुँचता है वहाँ उसकी देखने की लालसा रहती है, उसमे देखने की स्वाभाविक भूख है। वह नित नूतन तत्व के लिए तडपता है। किन्तु वह देखने मे कभी तृप्ति का अनुभव नही करता। कितना ही कुछ देख लिया जाय, इन्सान को सतुष्टि नही आती, क्योकि उसका वह देखना समीक्षण पूर्वक नहीं होता है।

व्यक्ति बम्बई जैसी महानगरी मे पहुँच जाय और इस महानगरी के चप्पे–चप्पे को देख ले–इतना देखने पर भी क्या उसे सतुष्टि होती है? इतना ही नही, सारे ससार को देख लिया जाय, लेकिन मनुष्य के दिल मे सतुष्टी या सन्तोष नही होगा। उसका भी कोई कारण होना चाहिए।

वस्तुत देखने की प्यास तीव्र है। जैसे किसी को पानी पीने की लालसा है। पानी सरीखा तत्व दिखाई दे जाता है और वह पीया भी जाता है लेकिन प्यास नही बुझती। वह तरल पदार्थ कितना ही कुछ पीया जाय, प्यास शान्त नहीं होती तो प्यासे व्यक्ति को चिन्तन करना पडता है कि इतना सारा द्रव–पदार्थ, जिसको पानी कहा जाता है, मै पी गया, लेकिन मेरी प्यास शान्त क्यो नही हुई? वह अनुसधान करे तो उसकी चितन–धारा उभरेगी कि मैने पानी के नाम से जो पीया है वह या तो पानी नही –पानी होता तो प्यास अवश्य बुझती या मैंने पीने की कला नही सीखी है, पानी कैसे पीना चाहिये, यह नही जाना। इन दोनो मे से कही न कही कुछ कमी अवश्य है। इसीलिए इतना सारा पानी पीने पर भी प्यास नहीं बुझी। यदि वह सच्चा जिज्ञासु–पिपासु है तो खोज अवश्य करेगा। पानी वास्तविक पानी है तो पीने की विधि सही नहीं है। इसीलिए प्यास बुझाने मे उसे सफलता नही मिलती है। वैसे ही मानव को देखने की, पानी की तरह तीव्र जिज्ञासा बनी हुई है, इतनी तीव्रता है कि कोई प्रगाढ निद्रा मे सोया हुआ है और उससे कोई कहे कि देखो बाहर कोई जुलूस आया है, चला जायेगा, जल्दी उठो तो वह प्रगाढ निद्रा से उठकर देखने की चेष्टा करेगा, लेकिन वह सोच

नही पाता कि मै देख क्या रहा हूँ?

देखने की प्यास सच्ची है लेकिन जिसको देखना चाहिये उसको वह देख नही पा रहा है। जो दिखाई दे रहा है वह देखने की प्यास को शान्त करने वाला नही है। जो दृश्य देख रहा है वह या तो देखने की शक्ति को देख नही पा रहा है, या फिर उसके पास अन्दर देखने की विधि नही है। इन्सान अपने कर्म के पर्दे के भीतर देखना नही चाहता। वह यह नही सोचता कि मेरे शरीर के पर्दे के पीछे क्या है? मेरी देखने की प्रक्रिया क्या बन रही है? नेत्र देखने के लिए लोलुप है। कान सुनने के अभिलाषी हैं, नासिका गन्ध सूघने को तत्पर है और जिह्वा रस चखने को उतावली हो रही है। स्पर्श इन्द्रिय अच्छे स्पर्श के लिए तृष्णावान् है। किन्तु इन्द्रियो की यह होड बहिर्गामी है। वह मौलिक दर्शन से भटकाने वाली है। क्योकि इन्द्रियॉ स्वय मे जड हैं–जडाभिमुख है। ऑखे देखने का स्वरुप नहीं जानती, कान सुनने की कला नहीं जानते। नासिका सूघने के स्वरूप को नही समझती। जिह्वा चखने की कार्य पद्धति का विज्ञान नहीं रखती और त्वचा स्पर्श का स्वरूप समझ नही पाती। समझने वाला इनसे भिन्न कोई और ही है। ये माध्यम या साधन हैं। इनके माध्यम से देखने और श्रवण करने की लालसा रखने वाला भीतर बैठा आत्म–तत्व है।

जड़ का नहीं, चेतन का समीक्षण

हमे यह समीक्षण करना है कि शरीर जिसके निर्देशन मे चल रहा है, जिसके इशारे पर चल रहा है, वह खिलाडी कौन है और उस खिलाडी के समीप रहने वाला तत्व क्या है? इस तत्व की ओर ध्यान नहीं देने से मनुष्य की सारी प्रक्रियाये यन्त्रवत् होती रहती है और वह अतृप्त का अतृप्त बना रहता है। उसकी दौड थी तृप्ति के लिए, लेकिन उसे वह तृप्ति मिलती नहीं।

आज के आम व्यक्ति की यह दशा बनी हुई है। इस दशा

को ठीक करने के लिए अथवा जिस उदेश्य से आए हैं उसकी उपलब्धि के लिए यह वर्तमान तन है। इसका सम्यक् समीक्षण–निरीक्षण ही हमे जडाभिमुखता से बचा सकता है।

मनुष्य जीवन और पशु जगत के जीवन को तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि पशु अपनी वृत्ति से चलता है, किन्तु उसमे इतना अनुसधान का भाव पैदा नही होता जितना कि मनुष्य मे। अतएव मनुष्य पशु से विशेष साधन व माध्यम सम्पन्न माना जाता है। किन्तु वह माध्यम और साधन क्या है, उसका उपयोग क्या है, इसका विज्ञान, अनुसधान–समीक्षण करने के लिए समय नही निकालता, उसको इसके लिए फुर्सत नही है। देखने के लिए वह चौबीसो घण्टे लगा रहता है, किन्तु देखने वाले को देखने के लिए एक घण्टा भी नही लगता है। यह कितना बडा आश्चर्य है? सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधित्व लेकर चलने वाला इन्सान आज क्या कर रहा है, क्या सोच रहा है, कितनी कल्पना की उडाने भर रहा है, किन्तु वह स्वय कल्पना के जाल मे इतना उलझ गया है कि उसको मार्ग ही नही मिल रहा है। वह इस मार्ग का अनुसधान वैज्ञानिक पद्धति से, समीक्षण दृष्टि से नही कर पाता है। इस अनुसधान के लिए जरा ठण्डे दिल से चितन करने, तटस्थ भाव से सोचने और समता के धरातल पर उतरकर खोजने की आवश्यकता है। आकाश मे उडने की, पाताल मे जाने की या जमीन पर दौड लगाने की आवश्यकता नही है। इसके लिए शरीर के भीतर अवस्थित चेतन केन्द्र को भीतर से जानने की, समीक्षण करने की आवश्यकता है। उसके भीतर जाने के लिए ऐसा समय निर्धारित होना चाहिए, जिसमे बाहर के दृश्य, जिनको बहुत समय से देखते आए है, सामने नही आवे। हम चेतन केन्द्रो के भीतर प्रवेश कर जावे उसके लिए प्रभु ने जो सकेत दिया है वह है समीक्षण ध्यान साधना मार्ग, सामायिक साधना मार्ग। यह मार्ग कितना भव्य है, कितना अनुभूति मूलक ज्ञान कराने वाला है? यदि इसका ज्ञान कर लेगे तो साधना फलीभूत हो जायेगी।

सामायिक बनाम समीक्षण

सामायिक की शुद्ध साधना के लिए सामयिक का नियमित प्रोग्राम बनाइये। 48 मिनट के कार्यक्रम मे अपने भीतर झाक कर देखिए, अपना समीक्षण करिए—ज्ञान का ज्ञान कराने वाला तत्व कहाँ हैं—इसी तत्व की खोज के लिए कम्प्यूटर का निर्माण किया गया है। शरीर विज्ञान के लिए भी साधन उपलब्ध हैं। लेकिन आत्म—ज्ञान की खोज करने के लिए चरण नहीं उठाए गए हैं। वह चरण वीतराग की वाणी मे मिल रहे हैं। प्रभू ने सकेत दिया – 'नाणस्स सव्वस्स पगासणाए'

ज्ञान को प्रकट करने वाले वीतराग देव ने यह नही कहा कि आप किसी प्रकार का बाह्य प्रदर्शन करे। ज्ञान को प्रकट करने के लिए यह सामायिक साधना है। यदि यावत् जीवन की सामायिक साधना बनती है तो बहुत सुन्दर। यदि वह नही बनती है तो एक घण्टे भर की साधना इस विधि से बने कि उसमे आप अपने आप को देखे, अपना समीक्षण करे, तो आपको ज्ञात होगा कि आप अनन्त शक्ति स्रोत हैं। आप मे सभी शक्तियाँ स्वाधीन रूप से रही हुई हैं। आप किसी के अनुचर नहीं हैं। आप अपने आप के स्वामी है, किसी के गुलाम नही हैं।

कुछ वर्षो पहले लोग सोचते थे कि हिन्दुस्तान गुलाम है, पराधीन है। अब साचते हैं कि हम स्वाधीन हैं। यदि आप स्वाधीन हैं तो अपने आप को देखे कि आप स्वाधीन किस रूप मे है? आप किसी के स्वामी हें या गुलाम है, उसके लिए मै प्रश्न वाचक चिह्न उपस्थित कर रहा हूँ। आप अपने आप के मालिक हैं, गुलामी छोडे—अपनी शक्ति पर विश्वास करे और गुलामी पर नियत्रण करे। इस पर नियत्रण तव होगा जवकि आप वाहरी ज्ञान को प्राप्त करने वाले माध्यमो पर नियत्रण कर लेगे। वह नियत्रण तव होगा जव कि ज्ञान का ज्ञान करना शुरू कर देगे। आत्म—समीक्षण अथवा अन्त

शक्तियो का निरीक्षण प्रारम्भ कमर देगे। इस रूप मे सामायिक साधना आत्म—स्वातन्त्रय की साधना बन जाएगी। यद्यपि आज का विषय कुछ सूक्ष्म हो रहा है, फिर भी मैं समझता हूँ कि आपकी बुद्धि इतनी कमजोर नही होगी कि भार महसूस करने लग जाय। मै जहॉ तक चितन करता हूँ, आज के युग मे मनुष्य की मानसिक क्षमता सूक्ष्म विषय को झेलने की अवश्य बनी है, लेकिन वे इस विषय को जानने की कोशिश नहीं कर रहे हैं।

कवि आनन्दघनजी इस विषय मे भगवान के चरणो मे निवेदन कर रहे हैं कि भगवन ! मै याचना नही कर रहा हूँ, माग नही कर रहा हूँ—एक ही बात कह रहा हूँ कि इस मन का परीक्षण कैसे करूँ

"शान्ति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे ।
शान्ति जिन एक मुझ विनति।"

साधक अपनी साधना के अनुसधान के मार्ग पर चलते हैं। किन्तु वर्षो तक साधना करने पर भी जब उसका साध्य ज्ञात नही होता है तब वे भगवान के चरणो मे निवेदन करते है कि इस स्वरूप को कैसे जानू—मन का कैसे परीक्षण करूँ। वर्षो तक साधना करने वाले के मन मे जिज्ञासा है या नहीं? आप अपनी जिज्ञासा को आत्माभिमुखी बनावे।

मन-अश्व का समीक्षण

शरीर पिण्ड को देखने के प्रयास के साथ मन का भी समीक्षण करले कि यह मन हमको गुलाम बनाकर चल रहा है या हम उसको गुलाम बना रहे हैं। मन राजा है या आत्मा राजा है। हम मन के अधीन है या मन हमारे अधीन है। हमने मन को जीत लिया है या मन ने हम को जीत लिया, इतना ही निर्णय करना है। यह निर्णय पुस्तको को पढने से नही होगा। विश्व के ना कुछ तत्वो को देखने से नहीं होगा। वह निर्णय भातिक विज्ञान के समग्र रूप को ग्रहण करने से नही होगा। वह निर्णय तब होगा जबकि ज्ञान के

माध्यम से जानने वाले का समीक्षण कर लिया जाएगा।

आज आपको मति–ज्ञान और श्रुत–ज्ञान है। पॉच इन्द्रियो ओर मन से होने वाला ज्ञान मति–ज्ञान है। जब इसमे इतनी परिपक्वता हो कि दूसरो को समझा सके तब वही मतिज्ञान श्रुतज्ञान की सज्ञा पाता है। मति और श्रुत ज्ञान पॉच इन्द्रियो और मन के माध्यम से होते है। इन इन्द्रियो और मन के विषय को सम्यक् रूप से देखने की कोशिश करे। ज्ञान आपके भीतर से होता है। परन्तु याद रखे कि ज्ञाता का ज्ञान किए बिना आत्म–समीक्षण नही होगा। आप शरीर को साधना मे बैठा दे, मन को मोड दे। मन को बदले या कुछ भी करे, लेकिन इस ज्ञान का बोध हुए बिना मन आपकी बात नही मानेगा। आपको गुलाम बनाकर चलेगा, आपको धक्का देकर चलेगा। इसके बारे मे प्रभू ने बारीकी से सकेत दिया है।

असली घुड़सवार

एक सम्राट के पास एक जगली व्यक्ति सात घोडे लेकर आया। घोडे अच्छे थे, हष्टपुष्ट थे। सम्राट् ने कहा कि सुन्दर घोडे हे, इनको खरीद लिया जाय। घोडो को खरीद लिया गया और निश्चित स्थान पर बॉध दिया गया। उनको दाना खिलाने और पानी पिलाने की व्यवस्था कर दी गयी। हजारो रूपए उन पर खर्च कर दिए गए। लेकिन जिस वक्त सम्राट् के सवारी करने का प्रसग आया तो एक घोडे को लाया गया। लाने वाला स्वय तग आ गया। घोडे ने दो–चार लाते उसके मार दी। दीवान ने कहा कि हुजूर यह घोडा आपसे सॅभलेगा नही। इसको जो व्यक्ति पकड कर लाया है उसी को सौंप दिया जाय। सम्राट् ने कहा कि इसको बॉध दो ओर दूसरा घोडा लाओ। एक के वाद एक करके सातो घोडे लाए गए लेकिन एक भी वेठने लायक नही वना।

तव सम्राट् ने कहा कि दीवानजी, घोडे अच्छे और सुन्दर दिख रहे हैं लेकिन ये वैठने लायक कैसे वने, इसके लिए प्रयत्न करना

चाहिए। दीवानजी ने कहा कि कुछ इनाम घोषित करिए। इनाम साधारण नही हो, विशेष हो। जो इन घोडो को बेठने लायक बना देगा उसको सेनापति या सेनाध्यक्ष बना दिया जाएगा। जिसकी इच्छा हो वह प्रयत्न करे।

इस घोषणा को सुनकर बहुत उम्मीदवार खडे हो गए। उनमे से छॅटनी करके सात आदमियो को कुछ योग्य समझा गया। सातो को एक–एक घोडा सभला दिया गया कि प्रतिस्पर्धा की भावना से इनको दौडाइए और सौ कोस की दूरी पार करने के बाद तीन रोज मे वापिस आ जाना चाहिए। जो इस प्रकार का कार्य कर सकेगा उसको यह पद दिया जाएगा, अन्य को नही।

सातो व्यक्ति एक–एक घोडा लेकर चले। पद का लोभ था। मनुष्य को सस्ती पदवियॉ अच्छी लगती हैं। अहकार की पूर्ति जिस पदवी से होती है, वह पदवी अभीष्ट होती है, चाहे उसके पीछे कितना ही कष्ट उठाना पडे।

वे सातो सवार एक–एक घोडा लेकर आगे बढे। जैसे ही जगल का रास्ता आया, घोडे दौडने लगे। ऊपर बेठने वाला लगाम खीचता है, एडी दबाने की चेष्टा करता है लेकिन घोडो पर कुछ भी असर नही हुआ। ऊपर बैठने वाले लुढक गए। कई घिसटते हुए चले गए। लहूलुहान हो गए। तीसरे रोज एक व्यक्ति आया, घोडे पर लटकता हुआ। दीवान के पास आकर कहा कि मेरी यह दशा हुई है। मै घोडे पर नियत्रण नही कर सका। उसके बाद पॉच व्यक्ति और आ गए। उनकी भी पहले वाले जैसी ही दशा बनी हुई थी।

दीवान सोचने लगा कि 6 व्यक्ति तो आ गए, परन्तु सातवॉ क्यो नहीं आया। आज तीसरा दिन पूरा हो रहा है। सध्या होते–होते सातवॉ व्यक्ति भी आ गया। सब ने देखा कि वह मस्ती के साथ प्रसन्नचित्त होकर घोडे पर बेठा है। लगाम ढीली छोड रखी है। उधर चलो इधर चलो यह भी कहने की आवश्यकता महसूस नहीं हो रही है।

वह सम्राट् के सामने उपस्थित हुआ। सम्राट् कहने लगा कि 6 व्यक्तियो की दुर्दशा देखकर मै हैरान हो गया। तुमने इस घोडे को कौनसी दवा पिलाई, कैसे वश मे किया, कितने चाबुक लगाए। लगाम कैसे पकडी, इसके कान मे कौनसी फूक मारी, जिससे इसने बोध पाया और तुम्हारे अधीन हो गया? उसने कहा कि मैने एक भी चाबुक इसके नही लगाया, न लगाम या रस्सी बॉधी। मैने कुछ भी इसके साथ बुरा बर्ताव नही किया। सिर्फ इसके स्वरूप को समझा और इसके साथ चलता रहा। इसके साथ मित्रता की और इसने समर्पण कर दिया व मेरे अधीन हो गया।

उसने कहा कि मालिक, यह जगल मे रहने वाला घोडा था। जगल मे स्वच्छद विचरण के कारण किसी की अधीनता स्वीकार करने मे असमर्थ रहा है और तो और मक्खी और मच्छर भी इस पर दो सैकेण्ड भी नहीं बेठ सकते। बैठने की चेष्टा करते कि यह घोडा अपने शरीर को इस प्रकार खुजाता है कि जिससे उनके पैर भी नहीं जम पाये। पूछ के बाल इसके शरीर पर इधर–उधर घूमते रहते है। इसे खूटे से बॉधना इसकी रूचि के प्रतिकूल है। जबरन इसको बॉध भी दिया तो यह रस्सी को तोडने की चेष्टा करेगा। यदि इसे सॉकल से बॉधेगे तो यह सॉकल को तोडने मे तो समर्थ नहीं होगा किन्तु मन ही मन छटपटाता रहेगा। अपने स्वभाव का परिवर्तन नहीं कर पाएगा। इसके लगाम लगाकर इस पर बैठने की कौशिश की जाएगी तो यह घोडा इस प्रकार उछलने लगेगा, छलागे लगाएगा और अपने सवार को गिरा देगा। जीन के साथ सवार ने अपने शरीर को बॉध भी लिया तो भी जीन नीचे लटक जाएगा तब सवार या तो जमीन पर गिर पडेगा या घसीटा जायेगा इत्यादि दृष्टि से मैंने इसके स्वभाव को परखा और यह भी जाना कि इसको सर्वथा खुला रखा जाए तो जगल मे भाग जाएगा। वेसी स्थिति मे इसको सुधारना तो दूर, मैं पकड भी नहीं पाऊगा। अतएव मैने सिर्फ इसके गले मे लम्बी रस्सी का मुह वॉधा और रस्सी के दूसरे मुह को पकड लिया घोडे को खुला छोड दिया। यह अपने जगली स्वभाव के कारण दोडने लगा, छलॉगे मारने

लगा। जितनी लम्बी रस्सी थी उतनी ही सीमा तक दौडा पर रस्सी का दूसरा मुह मेरे हाथ मे होने से वह लम्बी दौड नहीं दौड सका इसी घेरे के अन्तर्गत इसकी दौड चलती रही। जब यह रूकने लगा तो मैंने दूर से चाबूक दिखाया फिर भगा, ऐसे रस्सी को कुछ समेटता रहा, नजदीक होने पर शब्दो का प्रयोग करने लगा। जब यह शब्द के इशारे से दौडने लगा तो फिर सिर्फ शब्दो के सहारे उसको शिक्षित करता रहा, अततोगत्वा शब्द से मेरे समीप आ गया तो मैने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए सहलाया और इस पर मै सवार भी हो गया। बाहरी रस्सी और लगाम के बिना स्नेहमय शब्दो से अपने वश मे कर लिया। मैं इस पर सवार हो करके यहाँ आ गया अब इसको मानव की तरह आज्ञाकारी अनुचर बना दिया।

सम्राट ने तुष्ट होकर उसको पारितोषिक दिया। यह तो रूपक है। मन रूपी घोडा ससार रूपी अटवी मे अनादि काल से भटक रहा है। इसके ऊपर यदि सवार होना है तो अन्य हठयोगिक प्रयोगो को छोडकर सहज योग के प्रयोग के साथ इस मन रूपी घोडे को शिक्षित करने की आवश्यकता है। सम्यक् श्रुत का दूसरा छोर हाथ मे रख कर धीरे–धीरे असद् विषयो से निवृत्त कर सद् विचारो मे प्रवृत्त कराना चाहिये। फिर उसे समभाव पूर्वक साधते हुए आज्ञाकारी घोडे की तरह सहचर बना लेना चाहिए। यह कार्य समीक्षण दृष्टि पूर्वक श्रुत के आधार पर सम्यक् आचरण के साथ सम्पन्न किया जा सकता है। इस अभ्यास के लिए सबसे पहले सामायिक साधना के अतर्गत विविध आयामो के साथ शिक्षित करने का प्रसग रहता हे।

अपना घोड़ा

सम्राट की जिज्ञासा बढ रही हे। मैं भी आपसे पूछ लू कि आपके पास भी कोई ऐसा घोडा आ जाय तो आप उस घोडे पर बैठ सकेगे या नहीं? यदि आप उस घोडे पर बैठ जायेंगे तो आपको बहुत बडा पद मिल जाये, सारे विश्व को शान्ति मिल जाये। वह घोडा बाहर का नहीं हे। प्रत्येक व्यक्ति के पास एक–एक घोडा हैं। सब

उस घोडे पर बैठे है। किस के पास घोडा नही है। आज दुनिया मे अरबो की जनसख्या है। प्रत्येक व्यक्ति के पास घोडा है। हाथ मे लगाम है, फिर भी घिसटते जा रहे हैं। मन का घोडा वश मे नही है तो लहुलूहान नहीं होगे क्या । जरा चितन करे। आप कितने पराधीन बने है, मन के कितने गुलाम है। मन रूपी घोडे को कहाँ बॉधेगे। इस मन रूपी घोडे पर जब तक आपका नियत्रण नही होगा तब तक आप इस ससार मे स्वतन्त्र नही होगे, विजयी नही होगे।

आपने अब तक किस पर विजय प्राप्त की? क्या परतत्र व्यक्ति विजयी माना जा सकता है। रावण के मन पर किसने विजय पाई। आज अधिकाश व्यक्ति कही मन के घोडे के साथ घिसटते तो नही जा रहे है? क्या आप इस स्थिति को सुधार नही सकते?

साधना की दृष्टि से आज सारे ससार मे अलग-अलग पद्धतियॉ चल रही है। किसी पद्धति वाले कहते हैं कि मन को जकडो, कोई कहता है मन को मार दो, लेकिन क्या कोई मन को बॉध सकता है, मार सकता है या रोक सकता है? मैने सम्पर्क साधा और आज मै इसका स्वामी बन गया।

आज भाई-बहिन साधना करने बैठते है तो सबसे पहले यह शिकायत करते हैं कि महाराज मन वश मे नहीं है, कैसे साधना करे ? सामायिक मे बैठते है तो मन इधर-उधर भागता है, कैसे सामायिक करे। किन्तु मन को समीक्षण ध्यान साधना के द्वारा नियत्रित किया जा सकता है। यदि साधना मे बैठने वालो को अपने मन पर अकुश रखना हे तो उसे छुटपल्ले नही रखना है। साधना मे बैठने के बाद आप मन को पकडने की कोशिश करेगे तो उसे पकड नहीं पायेगे, किन्तु साधना की विधि से उसका निग्रह करिए, उसके गुलाम मत वनिए, स्वामी वनिए। उसके साथ मित्रता करेगे तो मन रूपी वह घोडा आपके वश मे आ जाएगा। आप मन के घोडे पर सवार हो जायेगे तो उसके स्वरूप को समझ सकेगे। मन नियत्रित हुआ कि सामायिक साधना रसप्रद वन जाएगी। किन्तु मन-नियत्रण के लिए समीक्षण

ध्यान का अवलम्बन आवश्यक है। आप समीक्षण साधना मे मन की वृत्तियो के द्रष्टा बने। उसे जबरन नही, द्रष्टा भाव से रोके, उसके समक्ष साधना के विविध आयाम प्रस्तुत करे। एक अग्रेजी कहावत है–"एम्पटी माइण्ड इज डेविल्स वर्क शॉप।" अर्थात् "खाली दिमाग शैतान का कारखाना है।" यदि आपने मन के सामने साधना के प्रयोग प्रस्तुत कर दिए तो उसका भटकाव स्वत रूक जाएगा और वह मन का घोडा आपके नियन्त्रण मे आ जाएगा।

सामायिक साधना वर्षो से की जा रही है, पौषध उपवास भी चल रहे हैं, किन्तु साधना कैसी होनी चाहिए। भगवान ने इसका क्या रहस्य बताया है, उस रहस्य को पकडे बगैर अनेक तौर–तरिके अपना ले, जब तक आप अपने अन्दर रहने वाले मन रूपी घोडे को साध नही लेगे तब तक मन काबू मे नही रहेगा और आप उस पर नही बैठ सकेगे, उसको अपने अधीन नही कर सकेगे।

बन्धुओ ! यह साधना की कुछ सूक्ष्म चर्चा है, आपके मस्तिष्क मे भारी प्रतीत हो रही होगी, किन्तु इस भार से डरे नही। आपको बहुत दिन हो गए है राबडी खाते–खाते। अर्थात् स्थूल चर्चा करते–करते, बीच मे एक आध रोज पकवान आता हे तो पच नही पाता है। मै आपको आपके मन के विपरीत परोसता हूँ। क्योकि मै आपकी रूचि के अनुसार कार्य करता रहूगा तो अपने कर्तव्य का पालन नही करूँगा। आपकी रूचि उन विषयो मे है जो सुन्दर कहानी के रूप मे हो और इस रूप मे रूचि एकाकी बन जाती है। तत्त्व की बातो मे रूचि मद पड जाती हे। फिर आप यह नही सोच पाते कि मन हमारे हाथ मे क्यो नही आ रहा है। हमने उसकी कला नहीं जानी। एक छोटा सा रूपक प्रस्तुत करूँ–

मन एक पंखा

एक आदिवासी ने कभी शहर नहीं देखा था, लेकिन शहर के विषय मे बहुत कुछ सुना था। शहर मे बडे–बडे व्यक्ति रहते हैं।

बडी–बडी हवेलियॉ होती है। वहॉ बडे धनवान व्यक्ति होते है। उनका जीवन सुखी होता है। उसने सोचा कि मै भी शहर मे जाकर कही मजदूरी करलॅू। वह शहर मे गया। बम्बई जैसे फ्लेट देख ले तो सिर पर से उसकी पगडी गिर जाय, इतने ऊॅचे–ऊॅचे होते हैं। एक बडा मकान देखा तो सोचा कि इतने बडे मकान कोई देवता बनाते होगे। वह खडा–खडा आश्चर्य कर रहा था इतने मे घर का मालिक बाहर निकला–उसने अजनबी को देखा। सेठ को एक नौकर की आवश्यकता थी। क्योकि वह व्यापार के लिए दुकान पर चला जाता तो पीछे वृद्ध पिता घर मे अकेले रहते, अनको लकवा मार गया था। पीछे उनकी सेवा करने वाला कोई नहीं था। उनकी सेवा करने के लिए किसी व्यक्ति को नियुक्त करना था। सेठ ने सोचा कि एक नौकर हो तो निश्चिंत होकर व्यापार कर सकता हॅू। कोई नौकर मिल जाए तो उसको रखलू। जब सेठ ने उस आदिवासी को देखा तो उससे पूछा कि तुम यहॉ पर किस लिए आए हो? उसने कहा कि मै नौकरी के लिए आया हॅू। सेठ ने कहा कि तुम मेरे यहॉ रह जाओ। वह बोला–"क्या मजदूरी दोगे?" सेठ ने कहा "एक रूपया रोज दूगा और बढिया खाना खिलाऊॅगा।" उसने पूछा "काम क्या करना है।" सेठ ने कहा, "मजदूरी या श्रम नहीं करना है। मेरे वृद्ध पिता हैं, उनके पास बैठ जाओ, वे इशारा करे वह काम कर देना। वे बोल नही सकते है–सिर्फ हाथ से इशारा करते हैं।" वह अन्दर जाकर सेठ के पिताजी के पास बैठ गया।

गर्मी का मोसम था। लू चल रही थी। ऊपर पखा जोर से घूम रहा था उससे और भी ज्यादा गर्मी महसूस हो रही थी। सेठ के पिता ने हाथ से इशारा किया कि पखा बन्द कर दो। आदिवासी ने सोचा कि यह घूम रहा है इसको बन्द करना है। उसने जवान से कहा कि बन्द हो जा–लेकिन पखा सुनता और समझता हे क्या? आदिवासी ने देखा कि मानता नहीं है, मूर्ख है। उसने सोचा कि इसको रस्सी वाधना चाहिए। वह एक रस्सी लाया। पखे से लपेट कर स्तम्भ से वॉध दिया। रस्सी टूट गई। उसने सोचा कि यह वहुत

बडा ताकतवर है। हैरान हो गया। सेठ का काम नही करूगॉ तो नौकरी से निकाल देगे।

एक सॉकल पडी थी उसको पखे के लपेट कर खम्भे से बॉधने लगा। इतने मे सेठ आ गया। सेठ ने पूछा कि तू यह क्या कर रहा है? आपके पिताजी ने इसे बन्द करने के लिए कहा लेकिन यह नालायक मानता ही नही है। पहले रस्सी लपेटी, उसको तोड दिया, इसलिए अब सॉकल से बॉध रहा हूॅ। सेठ ने कहा कि सॉकल से भी कही पखा बॉधा जाता है? या तो यह सॉकल टूटेगी या पखा पिताजी के ऊपर गिरेगा, तू उनको खत्म कर देगा। सेठ ने कहा कि तू रहने दे मैं बन्द कर दूगा। वह दीवार के सहारे गया, हाथ से बटन दबाया, स्विच ऑफ किया और पखा बन्द हो गया। उस जगली ने सोचा कि यह जादूगर है। उसने कहा कि यह विद्या मुझे नहीं आती है। सेठ ने उसको समझाया कि पखा बन्द करने का बटन यहॉ पर है। इसको दबाने से पखा बन्द होता है और इसी बटन से चालू भी किया जा सकता है। तुम्हारी दृष्टि पखे पर है, बटन पर नही। यह तो उस आदिवासी की बात हुई।

आपके मन का पखा बाहर नहीं, अन्दर घूम रहा है। जब तक हमको सामायिक मे रस नही आएगा, यह मन का पखा सरलता से वश मे आने वाला नही, लोहे की साकल से भी बॉधा जाने वाला नही है। इसको बन्द करने का बटन भीतर है और आप बाहर से देख रहे है। इसलिए साधना की उपलब्धि नहीं हो रही है। 48 मिनट की सामायिक मे बैठ कर भीतर प्रवेश कर जाते है, आत्म–समीक्षण मे लग जाते है तो पखे का स्वरूप समझ मे आ जाता है।

यह ज्ञान का ज्ञान अर्थात आत्म–समीक्षण आपके लिए भारी पड रहा है, किन्तु आप इस तथ्य को जीवन मे नही लायेगे तव तक शुद्ध सामायिक नही कर सकेगे। आप चितन करे कि यदि आप परतन्त्र हैं, मन रूपी घोडे के स्वामी नही हें, मन, इन्द्रियॉ ओर जीवन के मालिक नही हें तो अपने आपके मालिक कैसे वन सकते हैं। स्वय

के मालिक बनना है तो, समीक्षण ध्यान की साधना से मोह को जीतना है। मोह पर व्यक्ति हावी हो जाता है तब वह उसको जीत लेता है। मोह को जीतने से मन को भी जीत लेता है। तब ससार मे उसकी विजय हो जाती है।

मै सूक्ष्म विषय मे चला गया, फिर भी आप ध्यान से समझ रहे है। मे अनुमान करता हूँ कि आप मे साधना के विषय के प्रति रूचि है, यदि रूचि नही होती तो गडबड करते। आप मे जिज्ञासा है। आप यह जानते है कि नवीन विषय आया है उसमे रूचि ली जाए कि यह विषय हर रोज नही मिलता। आप बात समझने की कोशिश करते है, यह सुलक्षण है। किन्तु सुनने के साथ आप अन्दर के विकारो को छोडने का प्रयास करेगे तो सब कुछ विजय कर लेगे, नहीं तो एक नही, अनेक जन्म बिता देगे फिर भी कोरे रह जायेगे।

आप समीक्षण के माध्यम से भीतर जाने की कोशिश करिए, जिससे यह जीवन सार्थक हो जाय। प्रभु महावीर की वाणी सार्थक हो जाय। जीवन का वास्तविक तत्व ज्ञात हो जाएगा तो आपका जीवन मगलमय बनेगा–आत्म–समीक्षण दृढ बनेगा और आप परम आनन्द के द्वार तक पहुॅच सकेगे। □□

10. कर्म-फल समीक्षण

अन्न जल से निर्मित मनुष्य तन के पवित्र स्वरूप को विकसित करने के लिये पवित्र पुरूषो का स्मरण और उनके उपदेश को हृदयगम करना आवश्यक है। स्मृति जितनी पवित्र बनेगी जीवन उतना ही पवित्रता की ओर बढेगा। स्मृति को पवित्र बनाने के लिये उपदेशामृत का चिन्तन, मन की निर्मलता व एकाग्रता आवश्यक है। उसके बिना साधना नही बनती और साधना के बिना जीवन सुसस्कृत नही होता। जीवन को सुसस्कृत बनाने के लिए ही धर्म सभाओ का आयोजन किया जाता है। इन आयोजनो मे भाई बहिन अपने अमूल्य समय का उपयोग करके, उपस्थित होकर श्रवण करते है। लेकिन चिन्तन यह करना है कि हम श्रवण कान से ही नही करे, मन से भी करे। किसी भी वस्तु का जायका, रस लेना है तो वह जिह्वा से लिया जाता है। उसके शरीर मे परिणति जठराग्नि से होती है। वैसे ही सुनने का काम कान का है। इसे अच्छे या बुरे रूप मे परिणत करना मन का काम है। मनुष्य चाहे कितना ही बढिया से बढिया भोजन करले, लेकिन यदि उसकी जठराग्नि व्यवस्थित नही है, अर्थात् विकृत है, विषयुक्त तत्व से खराब हो गई है, तो उसमे जो भी बढिया से बढिया अन्न पहुॅचेगा, वह भी विषयुक्त बन जायेगा। अपना साधारण शरीर–विज्ञान कहता है कि शरीर जब ज्वरयुक्त हो जाता है, अर्थात् बुखार तेज रूप से चढता है तब वात, पित्त, कफ बिगड जाते है, अर्थात बुखार सन्निपात का रूप ले लेता है तो उस समय अमृत तुल्य दूध और उसमे घुली हुई मिश्री उदर मे जाकर पॉयजन अर्थात् विष का काम करती है। जव मनुष्य को अपच, अजीर्ण हो उस समय वह भोजन करता है तो वह भी विष के रूप मे परिणत होता है। यह शरीर की प्रक्रिया जठराग्नि के साथ है–पाचन क्रिया के साथ है।

मन एक जठराग्नि

वैसे ही जीवन की प्रक्रिया मन के साथ हे। जीवन निर्माण की जठराग्नि मन हे। व मन रूपी जठराग्नि यदि मद हे तो कुछ

ओषधि का सेवन करके तीव्र बनाना चाहिये। यदि उसकी पाचन क्रिया विकृत हो गई है तो उसका इलाज करके उसे व्यवस्थित करना है। मन की जठराग्नि ही जीवन का रस तैयार करेगी और वर्तमान जीवन सुखी और समृद्धिशाली तभी बन सकेगा जबकि जीवन स्वस्थ वास्तविक रूप मे होगा। इस स्वास्थ्य को लाने के लिये पहले थोडा आत्म समीक्षण करले कि मन की जठराग्नि व्यवस्थित है या नहीं।

इसका अवलोकन, इसका देखना समीक्षण दृष्टि से ही होता है और वह होगा एकान्त के क्षणो मे। भीड के बीच मे, अनेक व्यक्तियो से बात करते हुए, मनुष्य अपने मन को नही देख पाता है। वह इधर उधर की बातो को सुनने मे लग जाता है और उनमे रस अधिक आ जाने से अपने आप को व्यवस्थित नहीं रख पाता।

इसलिये प्रभु महावीर ने साधना का स्वरूप बताया और कहा कि साधना एकान्त मे ही शुद्ध बन सकती है। किसी मनुष्य को एकान्त बहुत कम मिलता है। परिवार के सदस्यो के बीच मे रहकर साधना करेगा तो एकान्त कहॉ मिलेगा? धर्म स्थान मे आयेगा तो वहॉ एक ही व्यक्ति नही रहता अनेक व्यक्ति आयेगे जायेगे। जगल मे जायेगा तो वहॉ भी पशु पक्षी आदि आयेगे जायेगे, फिर एकान्त केसे हो?

एकान्त का अर्थ

यहॉ एकान्त का तात्पर्य यह है कि राग–द्वेष रहित बना जाये। उन्हे आने नही दिया जाये। साधना मे बैठे तब राग–द्वेष युक्त जितनी कल्पनाए आती हे जो कि मन को विकृत बनाती हैं, जठराग्नि को जहरीली वनाती हें, उनसे रहित बना जाये। इसकी औषधि यदि कोई है तो वह है समता, ओर इसी समता की साधना के लिये सामायिक मे वैठना है। यह सामायिक साधना कितनी लाभप्रद है, कितनी महत्वपूर्ण हे, वर्तमान और भविष्य के जीवन को कितना उज्ज्वल वनाती हे, यह प्रत्येक मानव के समझने का विषय हे। समता की औषधि 48 मिनट के लिये ले, उसको ठीक तरह से पचाने की कोशिश करे और देखे कि यह जो औषधि ली जा रही है,

वह अन्दर जाकर कही दूसरा रूप तो धारण नही कर लेगी? इसलिये पहले मन मे जो कचरा है, राग–द्वेष है उसे बाहर फैक दे। अच्छा वैद्य पहले पेट का रोग देखता है। जुलाब देकर पेट को साफ करता है, फिर औषधि का प्रयोग करता है। वैसे ही आपके मन मे गन्दगी तो नही भरी है? पाप वासना तो नही भरी हुई है? इसे देखने का अवकाश अन्य समय मे नही मिलेगा, क्योकि आप अन्य समय मे घरेलू कार्य मे लगे रहते हैं। उस समय मन की तरफ नही देख सकते। उस समय तो घर के ही दृश्य सामने आयेगे। यदि आप व्यापार मे लगे हुए है तो उस समय व्यापार की वस्तुए ही दिखाई देगी, मन को नही देख सकेगे। ऑफिस के समय ऑफिस का काम देखेगे। जब आप निद्रा मे हैं तो आप बेहोश है। उस समय भी आप मन को नही देख पायेगे। इन सब कार्यो को छोडने के बाद राग–द्वेष को हटाने के लिये जब आप समता की औषधि लेगे, सामायिक साधना मे आत्म समीक्षण करेगे तब अपने अन्तरग के अच्छे या बुरे रूप को देख सकेगे और जब मन के भीतर बैठी हुई गन्दगी पर आपका ध्यान जायेगा तो आप अपने हानि–लाभ या शुभ–अशुभ को अपने ही कर्मो का फल मान लेगे।

कभी–कभी कर्मो का फल तुरत मिल जाता है। पाप करके आये हो, तो उसका प्रभाव मन पर होगा। भविष्य मे पाप करने की चेष्टा करते हो तो उसका प्रभाव भी मन मे आप अनुभव करेगे। कभी पाप का फल पहले मिल जाता है। आपने पाप कार्य रूप मे परिणित नही किया, लेकिन पाप की क्रिया करने का सकल्प ही किया है, उसका इतना असर होगा कि पाप–क्रिया पूर्ण नही होने से पहले ही उस क्रिया का फल मिल जायेगा। आप कहेगे कि यह कैसे हो सकता है– इसे आप रूपक मे समझ जायेगे।

मन से वाणी और काया में

एक व्यक्ति मन मे दूषित भावना लेकर चल रहा था। वह सोच रहा था कि अमुक व्यक्ति मेरा शत्रु ह। आज मै जाऊँ और उस शत्रु को समाप्त कर दूँ। शत्रु को समाप्त करने के लिये उसके मन

मे पाप सस्कार जम गये। वे सस्कार पाप की एक सीमा तक ही थे। पापी के मन मे पाप पैदा हुआ, यह कच्ची अवस्था है। जैसे दूध को गर्म करने की दृष्टि से चूल्हे पर रखा। जैसे–जैसे गर्मी लगेगी वैसे–वैसे दूध गर्म होता चला जावेगा। जब दूध तप जायेगा तब उसमे अगुली डालोगे तो गर्म मालूम होगा। यदि और कुछ देर आग पर रखा रहा तो पूरा गर्म हो जायेगा। जब उफान आने की स्थिति होगी तो बर्तन से बाहर निकलने लगेगा। आपने दूध गर्म करने वाले व्यक्ति को देखा होगा। उसकी पहचान यह है कि जब भाप बाहर निकलने लगती है तो पानी के छीटे से उफान बैठ जाता है।

वही परिस्थिति आपके मन रूपी बर्तन की है। पाप मन से पैदा होता है और भावना मे तीव्रता आती है तो वाणी से कहने लग जाता है। फिर वाणी तक ही सीमित नही रहता, मन मे इतना पक्का विचार हो जाता हे कि – मुझे अब शत्रु को खत्म कर देना है, तब वह काया मे परिणत होने योग्य बन जायेगा। पाप का फल पाप करने से पहले भी मिल सकता है, और पाप करने के बाद भविष्य मे भी। भविष्य मे कुछ साल बाद भी मिलता है। पाप के फल के पहले मिलने से यहॉ यही तात्पर्य है कि मानसिक परिणाम दूषित हुए और द्वेष बढा। दुश्मन को खत्म करने की भावना तीव्र हुई और जब मारने के लिये पहुँचता है उस समय उसके दुश्मन को भी ज्ञात हो गया कि यह पुरूष मुझे मारने के लिये आ रहा है।

एक दूसरे की भावना एक दूसरे को ज्ञात हो सकती है, यदि व्यक्ति सवेदनशील हे तो यत्र की आवश्यकता नही रहती। टेलीपैथी की प्रक्रिया से एक दूसरे के भाव इतनी द्रुत गति से जाते हैं कि उन भावो को रोक नही सकते।

सूर्य की किरणो की गति का नाप वैज्ञानिको ने किया। किरणे आकाश से आती हैं। उनकी गति का अनुमान भी कर लिया, ये किरणे एक सैकण्ड मे 1 लाख 86 हजार मील की दूरी पार करती हैं। लेकिन विचारो की गति किरणो की गति से भी अधिक तेज हे।

अच्छे विचारो का प्रवाह बाहर जाता है तो बुरे विचारो का प्रवाह भी बाहर जाता है। मनुष्य किसी पर वार करने के लिये मन मे पक्के विचार लेकर चलता है और जिसके लिये बुरे विचार आये, वह व्यक्ति 50 हजार मील की दूरी पर है लेकिन जिस वक्त उस पुरुष ने इसके प्रति बुरे विचार मन मे पैदा किये उस समय विशेष अतर नही पडेगा – कुछ ही समय मे उस व्यक्ति के मन मे प्रतिक्रिया पैदा हो जायेगी कि अमुक व्यक्ति मुझे मारने के लिये आ रहा है। ऐसे कई उदाहरण आज मनोविज्ञान की दृष्टि से सामने आये है। शास्त्रकारो ने इसका बहुत विश्लेषण किया, इसकी बहुत बारिकी से व्याख्या की है।

विचारों का समीक्षण

उस व्यक्ति ने मन मे विचार कर लिया कि अमुक व्यक्ति को मुझे मारना है। वह व्यक्ति उसी समय उठ गया और मकान से बाहर निकला और आधा रास्ता पार करके चला आया। उसने हत्या तो नही की लेकिन हत्या करने का विचार पक्का हो गया।

दूसरे व्यक्ति के मन मे यह भावना उत्पन्न हुई कि अमुक व्यक्ति मुझे मारने के लिय आ रहा है। वह भी मकान से बाहर निकला। जो उसको मारने के लिये आ रहा था, वह रास्ते मे मिल गया। उस पर उसने ऐसा घातक प्रहार किया कि वह छटपटाकर वही मर गया। जो मारने का सकल्प लेकर चला था, वह बीच मे ही मारा गया। किन्तु उसके क्रूर परिणामो से उसे कर्म बध हो गया है। इस कर्मबध का परिणाम भी सामने आ गया। भावो की तीव्रता से पाप को कार्यरूप मे परिणत करने से पहले ही उसको पाप की भावना मात्र करने का दण्ड मिल गया। यदि वह उस व्यक्ति को मार डालता तो सरकार उसको बाद मे दण्ड देती या नहीं देती, किन्तु उसे वह मिल गया।

आप अपने एकान्त के क्षणो मे अपनी मनोवृत्तियो का समीक्षण करे कि राग–द्वेष और मोह की दशा कैसे दूर हो सकती है।

कभी–कभी ऐसा प्रसग आता है कि पाप को करते–करते ही उसका फल प्राप्त हो जाता है।

तात्कालिक कर्म फल

एक सरदार बस मे बैठ रहा था। बैठते–बैठते उसको एक खरगोश नजर आया। उसको मारने के लिये छुरा निकाला। वह खरगोश पर छुरा फैकने ही वाला था कि सयोग ऐसा हुआ, छुरा उसके ही हाथ पर पड गया और हाथ पर गहरी चोट लगी। वह खरगोश को तो नही मार पाया, लेकिन उसको उसी समय सबक मिल गया।

कभी पाप करने के बाद फल मिलता है तो दो तीन सप्ताह मे भी मिल सकता है। कभी वर्षो बाद मिल सकता है।

कर्म फल के सदर्भ मे कुछ वर्षो पूर्व की एक घटित घटना है। मेरठ जिले के दादरी गाव मे एक पहलवान रहता था। पहलवानी करने के बाद वह दूध पीता था। दूध भी पर्याप्त मात्रा मे आवश्यक था। वह दूध खरीदकर लाया और उसे बर्तन मे डालकर अगिठी पर गर्म करने को रख दिया तथा सोचा कि कसरत करके वापस आकर दूध पी लूँगा। हडिया रखकर कसरत करने चला गया। वहाँ पर एक कुतिया थी जो चुपके से आकर कुछ दूध पी लेती थी। ऐसा उसने कुछ दिनो तक अनुभव किया। उसने सोचा कि कोई मनुष्य तो यहाँ दिखता नही है फिर दूध कौन पी गया?

एक दिन उसने कुश्ती को गौण किया और हडिया को रखकर कोने मे छिपकर बैठ गया। कुतिया का रोजाना का अभ्यास था, उसने दूध पीना चालू किया। पहलवान चट से निकलकर बाहर आया ओर कमरे मे कुतिया को बद कर दिया। कुतिया ने कितना दूध पीया होगा – इतने दिनो मे अधिक से अधिक एक – दो किलो पीया होगा। उस पहलवान ने लोहे की सलाका तपाई और कुतिया की ऑखो मे डालकर उसकी ऑखे फोड दी। देखिये, मनुष्य कैसे अपने जीवन का दुरूपयोग करता है और कैसे मन को मलिन करता है। कुतिया तत्क्षण तो नही मरी लेकिन उसको इतनी वेदना हुई कि तीन दिन वाद वह समाप्त हो गई। पहलवान ने खुशी मना ली कि

मैंने दूध का बदला चुका लिया। कहते है – कुदरत मे देर है लेकिन अधेर नहीं है। सरकार देख लेती तो कुतिया को मारने का दण्ड दिया जाता या नही। ऐसा प्रावधान कानून मे है या नही? लेकिन कुदरत रचना मे देर है, अधेर नही। इससे उसका इतना कर्म बधन हुआ कि वे कर्म बधन सप्ताह भर मे ही प्रकट हो गये। पहलवान की दोनो ऑखो मे इतनी पीडा होने लगी, इतनी जलन लगने लगी कि सहना कठिन हो गया। उस भाई की ऑखो मे वेदना इतनी तीव्र हुई कि वह भी सात दिन मे समाप्त हो गया। यह निकट भविष्य मे फल प्राप्ति की बात हुई। किन्तु जिसके मन मे पवित्रता होती है, वह मन के सस्कारो को ठीक करता रहता है। उसे कुछ अच्छा निमित्त मिलता है, उसे मारने का प्रयास करता है, तब भी नही मार सकता और मारने वाला मारने की भावना का दण्ड पहले ही पा लेता है।

ऐतिहासिक घटना

ऐसी ही एक घटना मेरठ के पास पाचली गॉव मे घटी। दो किसान पॉच मील की दूरी से चलकर बैल खरीदने के लिये पहुँचे। बैलो की जोडी 1200 रूपयो मे तय कर ली। सौदा तय करते–करते घण्टा भर रात्रि व्यतीत हो गई। दोनो व्यक्तियो ने आपस मे विचार किया कि हम दो हजार रूपये लेकर आये हैं, 1200 रूपये बैलो की जोडी देने के है। बैलो की जोडी और बाकी के रूपये लेकर जगल के रास्ते से जाना है, घण्टा भर रात्रि बीत गई है, रात्रि मे जाने मे खतरा हे, इसलिए आज की रात्रि यही रह जावे और प्रात काल चले जायेगे। जिससे बैल खरीदे थे, उस व्यक्ति से कहा कि आज रात्रि हम यहीं पर रह जाते हैं, कल प्रात काल चले जायेगे। उसने चुपके से सुन लिया था कि इनके पास दो हजार रूपये है। उसने कहा ठीक हे, आज रात्रि मे यही पर रह जाओ। उनके लिये इतजाम कर दिया। बाहर की पडसाल मे दो खाट डलवा दिये, बिस्तर बिछा दिये, दोनो को सुला दिया।

कृषक भी दो भाई थे। बैलो के खरीददार तो निद्रा के अधीन हो गये। इधर उन दोनो भाईयो के मन मे पाप की वासना उत्पन्न हुई।

उन्होने सोचा कि प्रात काल होते–होते ये बैलो की जोडी ले जायेगे। 1200 रूपये मे सौदा हुआ है, 1200 रूपये अपने को मिल जायेगे। पर इनके पास मे दो हजार रूपये है– अपना मकान गाव के किनारे पर है, अपना खेत भी पास मे है, बस्ती नजदीक मे नही है। रात्रि मे कौन देखने वाला है? इनको रात्रि मे समाप्त कर दिया जाए तो, दो हजार रूपये अपने को मिल जायेगे और बैलो की जोडी भी पास मे रह जाएगी। उन्होने षडयत्र रच लिया। दोनो ने अपनी पत्नियो से कहा कि तुम तैयार रहना, बाहर के यात्री आये है, हम जब इशारा करे तब छुरा उनकी गर्दन के पार कर देना। हम गन्ने के खेत मे गड्ढा खोदने जा रहे है, उनको उस गड्ढे मे डालकर ऊपर से रेत डाल देगे किसी को पता नहीं चलेगा। पहले हम गड्ढा तैयार कर ले, तुम छुरा लेकर तैयार रहना, इशारा करे उस समय गर्दन मे छुरा भौक देना।

कहते हैं– जैसे को तैसा मिल जाता है। उनकी पत्निया भी वैसी ही थीं। उन्होने कह दिया कि हम तैयार रहेगी, आप गड्ढा खोद लीजिये। दोनो भाई खेत मे गड्ढा खोदने चले गये। उन्होने सोचा कि इस समय यहॉ पर कौन आ सकता है। गड्ढा खोद रहे थे और उसी तरह की बाते कर रहे थे।

सयोगवश एक व्यक्ति उधर से जा रहा था। उसके कान मे उन भाइयो की बातो की भनक पडी। कान मे शब्द गये तो उसने सोचा कि कोई खतरा है। ये किसी का धन हडपना चाहते है। उसने अनुमान कर लिया कि बाहर के मुसाफिरो को मारने का शडयत्र दिखता है। वह व्यक्ति घूमकर उन दोनो व्यक्तियो के पास पहुँचा और उनको जगाकर कहा कि जल्दी मेरे साथ चलो। तुम्हारा जीवन खतरे मे है। वे दोनो उठकर सम्भल गये और उसके साथ चल दिये।

उधर युवा वय के दो पुरूष, जो उन्हीं के पुत्र थे घर मे आये। उन्होने देखा कि आज नाटक देखने मे ज्यादा समय लग गया, लेकिन सोने के लिये सीधे खाट मिल गये, चलो सो जाओ। दोनो मुँह पर कपडा ओढकर आनन्द से सो गये, काफी जागरण किया हुआ

था, सोते ही उनको नीद आ गई।

रात्रि मे 12 बजे के लगभग गड्ढा खोदकर दोनो भाई आये और पत्नियो को इशारा कर दिया। दोनो स्त्रियॉ छुरा लेकर निकली और दोनो पुरूषो के ऊपर से कपडा उठाये बिना ही दोनो की गर्दन के पार छुरा घोप दिया और दोनो को खत्म कर दिया। खत्म करने के बाद स्त्रियो ने कमीज की जेब टटोली तो जेब मे 2 हजार रूपयो के बजाय बारह आने ही निकले – वे नाटक देखकर आये थे, उनके पास केवल इतने ही पैसे बचे थे। लेकिन स्त्रियो ने सोचा कि रूपये दूसरे ठिकाने रखे होगे, कहॉ जाते हैं बाद मे देख लेगे ? उन दोनो कृषको ने पत्नियो की सहायता से दोनो मृतको की लाशों को गड्ढे मे डालकर मिट्टी डाल दी और खुशी मनाने लगे। दोनो रात्रि मे सो गये। पत्निया भी सो गई।

पाप कितना ही एकान्त मे किया जाय, दुनिया जाने या नही जाने लेकिन उनका मन जानता है, मन उनको चैन नही लेने देता। चारो को रात्रि मे नीद नहीं आई। सूर्योदय होने के बाद दोनो भाई कुए पर गये। वहॉ उन्होने देखा कि बैल खरीदने वाले दोनो व्यक्ति कुए पर मुह–हाथ धो रहे हैं। उन्होने सोचा कि यह क्या धोखा हो गया। वे लौटे और जाकर लाशे देखने लगे। तो उन्हे ज्ञात हुआ कि उन दोनो के जवान लडके मारे गये हैं। जब पुलिस को पता चला तो सारे परिवार को गिरपतार करके ले गई।

दृष्टान्त का परिप्रेक्ष्य और आत्म–समीक्षण

देखिये, अज्ञान परिपूर्ण जीवन की कैसी दुर्दशा है ? उन्हे पता ही नही हे कि हमारा जीवन कैसा है, जीवन को सुन्दर बनाने का कैसा कार्यक्रम होना चाहिए ? कोनसा विधि विधान है? आप वीतराग देव के अनुयायी हैं। भाग्यशाली हैं। आप के भीतर पवित्रता का उदय हो चुका है, जो ऐसे आध्यात्मिक जीवन को जानने–समझने के अवसर मिल रहे हैं। आपको सारे ससार मे विशिष्ट साधना प्रणाली मिली हे। मै भी सकेत कर रहा हूँ कि आप जीवन की पवित्रता साधने के लिये, जीवन को तन्दुरुस्त बनाने के लिये अपनी मन की वृत्तियो का समीक्षण

करिये। इसमे ऐसी पापवासना की कालिमा तो सचित नही है? यदि पाप की कलुषिता का सचय है तो पहले उसको मन से बाहर निकालिये, बाहर निकालने का कार्यक्रम बताया जा चुका है कि अन्य कार्य करते हुए यह कार्य नही कर सकते। जुलाब लेना हो तो एकात मे जाकर मल का विसर्जन करना होता है। मन की कलुषिता त्यागने के लिये समय आपके पास है या नही ? ऐसा अवसर जो सौभाग्यशाली होते है उन्हे ही मिलता है। आप से पूछ लूँ कि आपने मन के मैल को दूर करने के लिये एकान्त स्थान की खोज कर ली है ?

सामायिक-काल समीक्षण : समीक्षण के धरातल पर

मैं कह रहा हूँ कि राग–द्वेष को दूर करिये, समता की साधना मे जुटिये। यह सामायिक साधना आनन–फानन मे आने वाली नहीं है। यह हाथ पर रखे हुए आवले की तरह सहज ही मे प्राप्त होने वाली नही है। यह महत्वपूर्ण साधना है। इसको खयाल मे रखिये। आप भाई–बहिन यह चितन कर ले कि 48 मिनट के लिये मुँहपत्ति बेटके का लेबल लगाकर सावद्य योगो का त्याग कर लेगे। माला फिरा लेगे, भक्तामर का पाठ कर लेगे। इतने मे 48 मिनट पूरे हो गये, सामायिक हो गई। लेकिन यह चितन किया या नहीं कि 48 मिनट के लिये ससार का त्याग किया ? सावद्य योगो मे 18 पापो का परित्याग किया? दो करण तीन योग से। 18 पापो के नाम याद होगे या बताने पडेगे? हिसा, झूठ, चोरी, मैथून, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का त्याग किया? राग–द्वेष आने के कारणो को हटा दिया? इस रूप मे कोठरी मे प्रवेश हो गया। किन्तु प्रवेश करके जुलाब लेकर दूषित विचारो के मल का विसर्जन किया या दूसरा काम करने लगे? भक्तामर का पाठ करना अच्छा है लेकिन खयाल करिये कि भक्तामर के श्लोक जिसने जाने हैं, उनके ध्यान मे यह आना चाहिये कि ऐसे जो भगवान हो गये है, मे उनकी स्तुति कर रहा हूँ। आप माला फेरेगे तो माला के मनके हाथ से चलाते रहेगे, जिह्वा चलती रहेगी, किन्तु मन भी उसके अनुरूप चलता है या नहीं? जिह्वा चलने लगी किन्तु नवकार मत्र का उच्चारण शुद्ध हे या अशुद्ध हे? मन चारो तरफ घूम रहा है। इस समय भी वह सामायिक का

कार्य नहीं कर रहा है। कदाचित अच्छी धार्मिक पुस्तक आपके पास आ गई तो पढने लगे। आपका मन उसमे लग गया। ज्ञान हो रहा है। श्रुत ज्ञान की उपलब्धि हो रही है। नये-नये विषय आ रहे हैं। तात्विक विषय समझ मे नही आयेगा। परन्तु रूचि हो गई तो आपका मन उसमे लगने लगेगा। मन लगना ठीक है। लेकिन कब लगाना? जिस उद्देश्य से एकान्त के कमरे मे गये है, पहले वह काम करना या यह काम करना। मै इसको और स्पष्ट कर दूँ। एक व्यक्ति ने पेट का मल साफ करने के लिये मल त्याग हेतु घर मे प्रवेश किया। दस्त देर से लगती है। वहॉ बैठा-बैठा पुस्तक पढ रहा है। मनोविज्ञान की दृष्टि से ध्यान कहिये कि मन पुस्तक मे लग जाता है तो दस्त का ध्यान ही नही रहता है। शौच निवृत्ति की हाजत होती है – दस्त की तरफ ध्यान देते है तो मल बरबस चला जाता है।

मन को पाप रूपी मल से खाली करना है उसके पश्चात् समता रूपी औषधि की मात्रा लेनी है, और आत्म-समीक्षण की साधना मे प्रवेश करना है। वही प्रवेश साधना का रस प्रदान करने वाला बनेगा। सामायिक के कार्यक्रम मे आपका मन डोलता रहा, केवल भक्तामर के शब्दो मे रह गया तो पुण्यवानी तो बधेगी, लेकिन जिस उद्देश्य से सामायिक साधना मे बैठे हैं, वह उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। मन के भीतर रहने वाले पाप रूपी मल को विसर्जित करना है तो सामायिक मे बैठकर विसर्जित करिये – फिर पवित्र समीक्षण के द्वारा सस्कारो को भरिये। ये पवित्र सस्कार आपकी चेतना मे कब आयेगे, जबकि आप समता के सिद्धान्त मे रम जायेगे और तब आपको रस आये विना नहीं रहेगा।

यह कार्य जिसने सही अर्थो मे किया हे, चाहे वह सम्राट रहा हो या सेवक, उसके मन की वृत्तियॉ ही शुद्ध हुई हैं, उसका समीक्षण गहन हुआ है ओर इसी समीक्षण की अन्त शोधी प्रक्रिया के द्वारा आप कर्म वन्ध के कारणो का एव उन्हे अवरूद्ध करने तथा निप्कासित करने के उपायो का ज्ञान प्राप्त कर तीनो योगो को विशुद्ध वना सकेगे।

□□

11. समस्या-तनाव : समाधान समीक्षण

ज्वलंत समस्या

यह निर्विवाद सत्य है कि आज का अधिकाश जन जीवन विभिन्न प्रकार के तनावो से गुजर रहा है। कही मानसिक तनाव है तो कही आर्थिक, पारिवारिक एव सामाजिक। कही राजनैतिक तनाव है, तो कही व्यावसायिक, राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय विधि नियमो की दुरूहता के। सब मिलाकर पूरा पर्यावरण तनावो की दुर्गन्ध से दूषित–सा हो गया है।

किन्तु जहाँ समस्या है, वहाँ समाधान भी होता ही है। मनोवैज्ञानिको का कथन है कि जितने प्रश्न खडे होते है, उतने ही समाधान पूर्व मे ही निश्चित होते है। समस्त तनावो से मुक्ति का एकमेव समाधान है – ध्यान–योग। ध्यान–योग से केवल मानसिक तनाव ही दूर होते हैं, ऐसी धारणा सत्य से बहुत दूर है। ध्यान–साधना केवल मानसिक तनावो से ही नहीं, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक एव राजनैतिक सभी तनावो से मुक्ति दिलाने मे सक्षम है। चूकि समस्त तनावो का मूल उद्गम तो मनोवृत्तियो का तारतम्य ही है। अत मनोवृत्तियो के तारतम्य मे समरसता ध्यान–योग से लायी जा सकती है। तत्व–द्रष्टा ऋषियो ने कहा है– "मनो विजेता जगतो विजेता", मन की विजय विश्व की विजय है। मन की एकाग्रता प्राप्त हो जाने पर आर्थिक, पारिवारिक एव सामाजिक सभी स्थितियो मे समरसता का प्रादुर्भाव होगा और समरसता को ही तनाव मुक्ति अथवा ध्यान–योग कहा जा सकता है।

ध्यान–योग की विभिन्न विधियो मे आगमानुमोदित समीक्षण ध्यान की विधि का अपना अलग ही स्थान है। जैसा कि "समीक्षण ध्यान प्रयोगविधि" नामक पुस्तक मे बताया गया है – समीक्षण का अर्थ है–सम्यक् प्रकार से द्रष्टा भाव पूर्वक देखना। यह देखने की प्रक्रिया भी विभिन्न रूपो मे होती है, जिसका कुछ विवेचन इसी मे किया गया है। यहाँ अब समीक्षण ध्यान साधना के आगे के प्रयोगो

का उल्लेख करना अधिक उचित होगा, जो कि साधक को एक क्रमबद्ध साधना का मार्ग प्रदान कर सके।

समाधान-समीक्षण ध्यान

समीक्षण की साधना, आत्म निरीक्षण की साधना है। इसे सम्यक् प्रकार से साधने के लिये "समीक्षण ध्यान प्रयोग विधि" मे प्रतिपादित निर्देशानुसार समय एव स्थान की नियमितता प्राप्त हो जाने के पश्चात् जीवन-गत व्यवहारो मे उसके प्रभाव का अध्ययन किया जाना चाहिये। वास्तव मे वही साधना सफल मानी जाती है, जिसमे परिवार, समाज एव राष्ट्र मे रहते हुए भी साधक का चित्त अप्रभावित रहे।

एकान्त के क्षणों में

जब समाज और राष्ट्र के बीच मे रहते हुए भी जीवन मे ध्यान की क्रियान्विति हो, मन विक्षुब्ध न हो, तभी वह ध्यान-साधना परिपक्व कही जा सकती है। क्योकि साधक जब एकान्त के क्षणो मे बैठता है तब मन को उत्तेजित करने वाले निमित्त प्राय शून्यवत् रहते है। निमित्त अनेको के बीच मे मिलते हैं। उन निमित्तो को पाकर मन मे राग-द्वेष की चिनगारियॉ सुलगने लगती है। उस समय यदि ध्यानाभ्यास का प्रयोग किया जाय तो समीक्षण की प्रक्रिया के द्वारा वृत्तियो को सम्यक् प्रकार से देखने मे सरलता बन जाती है।

ध्यान-साधना की स्थिति प्राप्त हो रही है या नही, इसका भी अहसास तभी हो सकता है, जब निमित्तो के बीच भी मन अनुद्वेलित बना रहे। चूकि एकान्त स्थान मे उत्तेजना कारक निमित्तो का अभाव रहने से मानसिक वृत्तियॉ कुछ तो स्वत शान्त रहती हैं, तथापि कुछ विचारो का सिलसिला मन की अस्थिरता के कारण एकान्त क्षणो मे भी चलता ही रहता है। किन्तु वह उतना उत्तेजक नही होता। समीक्षण ध्यान क्या है? उसका लक्ष क्या है? उसके द्वारा क्या-क्या उपलब्धियॉ हो सकती हे, तथा इसके माध्यम से कहॉ तक गहराइयो मे पहुॅचा जा सकता है- इत्यादि विषयक अनुभूति तभी हो सकती है, जबकि मन की अस्थिरता के परिणाम स्वरूप उत्पन्न विचार तरंगे उन विकट स्थितियो मे भी समाहित रहे।

उन तरगो को समाहित करने के लिये समीक्षण ध्यान का प्रयोग आवश्यक है। ध्यानावस्था मे भी मन की अस्थिरता के परिणाम स्वरूप विचारो की अस्त–व्यस्तता किस रूप मे है, किस हेतु से बन रही है, इसके पिछे मूल कारण क्या है, इत्यादि विषय का समीक्षण दृष्टि से अवलोकन करना साधक का मूल कार्य है। क्योकि वह तत्कालीन अवलोकन, मन को स्थिर करने मे विशेष उपयोगी होता है। अवलोकन के उसी क्रम से साधक आगे बढता रहे तो वह मन सम्बन्धी स्थूल वृत्तियो के साथ–साथ सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम वृत्तियो के अवलोकन करने का अभ्यासी बन जाता है। कदाचित् किसी साधक को उस साधना वाली अवस्था मे उठने वाली–वर्तमान की सूक्ष्म तरगो का अवलोकन कठिन भासित हो तो ऐसे साधको के भूतकालिक मानसिक प्रवृत्तियो को स्मृति–पटल पर उभारना और उन वृत्तियो का सम्यक् प्रकार से, समग्र दृष्टिकोण से अवलोकन कर भविष्य मे वैसी घातक, प्रमाद–युक्त पुनरावृत्ति न हो, इस बात का अभ्यास करना चाहिये। जिससे वह इस विषय मे अधिक सक्रिय हो सके, और उसके लिये समीक्षण साधना के प्रारम्भिक सोपान पर पहुँचना सम्भव हो सके।

तात्पर्य यह है कि समीक्षण ध्यान का साधक यदि आत्मा की सूक्ष्म वृत्तियो के अवलोकन मे अपने आप को अक्षम अनुभव करे तो इसकी पूर्व स्थिति मे मन को साधने के लिये जीवन की, अतीत दिवस की वृत्तियो का अवलोकन करे। "गत दिवस का जीवन–क्रम किन अच्छाइयो अथवा बुराइयो मे व्यतीत हुआ" इस अनुचिन्तन मे चित्त को नियोजित कर दे।

वर्तमान वृत्तियों का अवलोकन

ध्यान साधना मे भूतकालीन वृत्तियो का समीक्षण दृष्टि से अवलोकन करने का अभ्यास वन जाने पर वर्तमान की मानसिक अस्थिरता शनै शनै समाप्त होगी, ओर वर्तमान मे भी जिन वृत्तियो का प्रकटीकरण नही हो रहा हे, किन्तु मानसिक सूक्ष्म तरगे मन के ऊपर उभर रही हें, उन तरगो के मूल मे जो हेतु है, उसका भी

अवलोकन करता हुआ साधक यह भी अभ्यास करले कि इस वक्त निर्जन एकान्त स्थान है, पर साधनावस्था से निवृत्त होते ही व्यक्ति, परिवारादि के मध्य मे सासारिक व्यवहारो का प्रसग उपस्थित होगा। उस समय मन को उत्तेजित या विकृत करने वाले कई प्रसग आ सकते हैं, उन प्रसगो पर समीक्षण ध्यान का प्रयोग किस विधि से हो? जिससे कि यह समीक्षण दृष्टि परिमित समय मे ही न रहकर जन–समुदाय के बीच मे भी प्रयोगात्मक रूप से जीवन मे साकारता धारण करती रहे। जिससे व्यक्ति व्यावहारिक क्षेत्र मे भी अपना मानसिक सतुलन कायम रख सके। यही नही, वह प्रतिकूल व्यवहार को भी प्रतिकूलता के रूप मे न देख कर समभावपूर्वक देखने का अभ्यासी बन जाए।

प्रतिकूल व्यवहार

साधना के उन अमूल्य क्षणो मे आत्मालोचन पूर्वक स्वकेन्द्रित चिन्तन इस रूप मे हो कि किस प्रतिकूल व्यवहार से मेरा माना हुआ अहभाव, जिसको मैने ममत्व के रूप मे पकड रखा है, समत्व भाव मे परिणत हो जाय। जिस विधि से जीवन मे यह अभ्यास होगा वही विधि समीक्षण ध्यान की प्रयोग विधि कहलायेगी।

उस प्रयोग विधि मे ही जीवन की बहुमूल्य घडियॉ व्यतीत होती रहे। एतदर्थ आने वाले प्रतिकूल शब्द को किस रूप मे ग्रहण किया जाय, यह अभ्यास इस साधना काल मे सध जाने से साधना काल के अतिरिक्त समय मे ध्यान प्रयोग को निर्भयता पूर्वक आचरण मे लाया जा सकता है।

एक सामान्य सा उदाहरण ले–

व्यावहारिक क्षेत्र मे कभी एक दूसरे को समझाना पडता है। कभी–कभी प्रसग आता है कि जिस विषय को पूर्व मे श्रवण नही किया हो, बुद्धि मे पूर्ण सस्कार उभर न पाये हो, ऐसा विषय समझते समय समझाने वाले से जिज्ञासा दृष्टि पूर्वक पुन पूछने का प्रसग भी आ सकता है। उस वक्त समझाने वाले महानुभाव वार–वार एक ही प्रश्न श्रवण कर अपने मानसिक सन्तुलन को खोकर कभी कह बैठे कि अरे

मूर्ख ! इतना भी नही समझ रहा है ? उस वक्त उस मूर्ख शब्द को हजम कर पाने और शब्द के निमित्त से होने वाली कलुषित वृत्ति को अपने मन–तत्र मे स्थान न देने तथा उस मूर्ख शब्द को सुरक्षित रूप मे मानव तत्र से हटा देने की कुशलता आ जाय तो समीक्षण ध्यान के प्रयोग का अनुभव किसी सीमा तक सिद्ध माना जा सकता है।

मूर्ख शब्द एक विषैला कैप्सूल

उस मूर्ख शब्द को किस रूप मे देखा जाय, यह एक विचारणीय प्रसग है। इस शब्द के कलेवर मे भरे हुए उत्तेजित भाव रूप जहर को एन्टीबायटिक कैप्सूल के रूप मे देखने का अभ्यास होना चाहिये।

विष से भरे हुए कैप्सूल को किसी निरोग, स्वस्थ व्यक्ति को खिलाने के लिये उसके हाथो मे कोई पकडाता है, तो वह स्वस्थ व्यक्ति उस कैप्सूल के ऊपरी चमकते कवर को देख कर भी यह जानता है कि इसके भीतर जहर भरा हुआ है, अत उसे खायेगा नहीं। यदि कोई अस्वस्थ व्यक्ति है तो उसने भी मुख मे रख पानी की घूट से पेट मे नही उतारा तो यह कवर मुख मे टूट जायेगा। उस वक्त रसनेन्द्रिय एव मुख मे रहने वाली स्पर्शनेन्द्रिय उस जहर का अनुभव करेगी। मुख के अन्दर कितनी जलन व पीडा होगी, मुख की निर्मल कोशिकाएँ हैं, उनके आघात के साथ ही जिह्वा और जबडा फफोलो से इतना भर सकता है कि जिसका कई दिनो तक शमन न होने से कोई वस्तु नहीं खाई जा सके और छटपटाना पडे। वेदना से निरन्तर आर्त्त–ध्यान बना रहे। परिणामस्वरूप बुद्धि इसी ओर लगी रहने से अन्य कार्य नही हो सकेगे। इस रसनेन्द्रिय व स्पर्शनेन्द्रिय के प्रत्यक्ष अनुभव से यह अनुमान किया जा सकता है कि कैप्सूल को तत्क्षण पानी के साथ अन्दर उतारा गया तो वह भीतर मे विस्फोट करेगा। कवर टूटते ही, पाचन–तत्र की स्वस्थ कोशिकाओ के क्षतविक्षत हो जाने से गृहीत पदार्थ का पाचन नही होगा। उसके अभाव मे रस की कमी रहेगी। शरीर की अन्य कोशिकाओ को पाचन–यन्त्र द्वारा निर्मित स्वास्थ्य वर्धक रस न मिलने एव रक्तादि की कमी से शारीरिक मानसिक आदि कमजोरी

भी व्याप्त होगी। अनेक रोगो का भाजन बन कर यह स्वास्थ्यमय जीवन खतरे मे पड सकता है। यह तो एक रूपक है, अनुभूतिपूर्वक हर व्यक्ति के समझ मे आ जाये इस दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। इसे ध्यान एव जीवन व्यवहार की दृष्टि से समझे।

स्वच्छ मानसिक तत्र और पवित्र आध्यात्मिक वृत्तियो के स्वास्थ्य को सन्मुख रखते हुए साधक समीक्षण दृष्टि से उस मूर्ख शब्द को उसी कैप्सूल के रूप मे कल्पित करके उसके भीतर की विकृतियो को मूर्ख शब्द की प्रतिक्रिया जहर के रूप में देखे और उसका प्रवेश भीतर मे न होने दे। उसके कर्णगोचर होते ही समभाव के साथ उस पर प्रशस्त चिन्तन प्रारम्भ करदे। उसी दृष्टि से अनुचिन्तन करे कि यह मूर्ख शब्द रूप एन्टीबॉयटिक कैप्सूल मेरे मानसिक तत्र मे पहुँच कर बिखरा तो मानसिक तत्र की जितनी स्वच्छता है, वह सम्पूर्णतया विकृत हो जायेगी। नियत्रण क्षत–विक्षत होगा। मानसिक अशान्ति एव तनाव के साथ–साथ उस जाति के उत्कृष्ट विष के तुल्य विद्वेष रूप विष भीतर पैदा होगा। कदाचित् वचन के माध्यम से मूर्ख शब्द को शब्द रूपी खोल मे भरकर पुन प्रयोग कर्ता के पास प्रेषित करने का प्रसग आया तो उसके अन्दर तो असन्तुलन व विद्वेष की चिनगारियाँ दग्ध कर ही रही थी, किन्तु मेरे द्वारा प्रयुक्त–"तू मूर्ख है" यह शब्द रूपी कैप्सूल और विस्फोट करेगा। यह तो धधकती हुई अग्नि मे घासलेट का काम होगा। जिससे उसका मानस तन्त्र अधिक क्षत–विक्षत होगा। साथ ही वह ज्वाला वायुमण्डल के भावात्मक प्रवाह मे अनेकानेक व्यक्तियो के मानस तत्र मे कलुषित भाव तथा विद्वेष की आग सुलगायेगी। मेरे प्रति भी सम्भव है कि वह अधिक विद्वेष रूपी विष को शब्दो मे भरकर प्रयोग करेगा। उससे न मेरा आन्तरिक जीवन सुरक्षित रह पायेगा और न ही उसका। इस प्रकार मानसिक, वाचिक एव परपरा से कायिक क्षति के साथ–साथ वर्तमान जीवन को सक्लेषित करना किसी भी रूप मे हितकारी नहीं है। ऐसा समभावपूर्वक चितन करते हुए साधक प्रारम्भ मे आने वाले मूर्ख शब्द को उसी समीक्षण दृष्टि से यथावत् देखकर उसको एक तरफ रख दे।

जैसे–स्वस्थ व्यक्ति उस एन्टीबॉयटिक कैप्सूल को हाथ मे लेकर एक तरफ रख देता है। मुँह मे प्रवेश नही होने देता, फलत तज्जनित अशान्ति का अनुभव नहीं करता, वही स्थिति उस व्यक्ति की भी होगी जो उस मूर्ख शब्द को कर्ण गोचर होने पर भी अन्दर पकडने की चेष्टा नहीं करेगा। वह उसे एक तरफ छोडता हुआ उस शब्द रूप कैप्सूल को जिस समीक्षण दृष्टि से देखेगा उसी दृष्टि से मूर्ख शब्द प्रयोगकर्ता महाशय को भी देखेगा। अपने भीतर प्रतिक्रियाओ का समीक्षण दृष्टि से अवलोकन कर समतापूत अमृत रस से आप्लावित भावो को मधुर शब्द रूप विटामिन के कैप्सूल तुल्य बनाकर मूर्ख शब्द प्रयोग कर्ता को, अपनी आत्मा के तुल्य, समीक्षण दृष्टि से देखता हुआ साधक, चिन्तन करे कि मेरी कम समझ के कारण इन समझाने वाले महाशय के भीतर जो विद्वेष रूपी विष पैदा हो गया है, वह इनके मानस तन्त्र को कितनी क्षति पहुँचायेगा, इसकी अनुभूति मै अपनी आत्मा से करता हुआ, विटामिन के तुल्य विनम्र–मधुर शब्दो का प्रयोग करूँ जिससे इनके मानस तत्र मे हुई क्षति समाहित हो जाय। इस प्रयोग से इन महानुभाव के भीतर आन्तरिक क्षति–पूर्ति हो या न हो, पर मेरे जीवन मे तो मै अपनी आन्तरिक सुरक्षा के साथ इनके निमित्त अमृत रस का झरना तैयार करलू। जिससे मैं शारीरिक, मानसिक व बोद्धिक स्वास्थ्य की सुरक्षा के साथ स्वय की प्रज्ञा को इतनी विकासोन्मुख कर लू कि अन्य अनेक प्राणियो के लिये विशुद्ध भावात्मक वायु–मण्डल के साथ आन्तरिक सुरक्षा का वायु–मण्डल निर्मित कर सकूँ।

शब्दों का अमी रस

ऐसा अनुचिन्तन करता हुआ समीक्षण साधक अमीरस से आप्लावित मधुर शब्दो का उसके प्रति प्रयोग करे कि आपने महान् कृपा की। मेरे क्षयोपशम की कमी से इस नवीन विषय को समझने मे में सक्षम नही हुआ, इसलिये पुन पुन आपसे पूछ कर आपको कष्ट देना पडा, आप क्षमा करे। मे आपके इस शब्द को समीक्षण दृष्टि से अवलोकित करता हूँ, और सोचता हूँ कि मुझ मे मूर्खता है, तो आपने सत्य ही वात कही, वस्तुस्थिति का वोध मुझे कराया। इसलिये में

आपका उपकार मानता हूँ। साथ ही साधक यह भी चितन करे कि मुझमे वस्तुत मूर्खता की अवस्था विद्यमान नहीं है तो यह शब्द मेरे लिये नही है। मैं क्यो इसको अपने अन्दर प्रवेश पाने दूँ। एक तरफ छोड दूँ। क्यो नहीं किसी के द्वारा प्रेषित शब्द का विपरीत अर्थ न लेते हुए उसे सही अर्थों मे ही ग्रहण करूँ?

यह एक रूपक है। इस रूपक के माध्यम से साधक सर्व प्रथम पिछली रात्रि के नियत समय मे समीक्षण ध्यान की साधना प्रतिदिन कम से कम एक घण्टे तक करे। उस साधना मे सासारिक सभी विचारो को विलग कर दे।

ससार से सम्बन्धित कलुषित भाव ममत्व वृत्ति को अभिभूत कर समग्र आत्माओ को अपनी आत्मा के तुल्य अनुभव करता हुआ उस ध्यान मे ऐसी समीक्षण दृष्टि निर्मित करे, जिससे उसे व्यावहारिक क्षेत्र मे भी घण्टे भर की साधना का आस्वादन स्वय आता रहे और अन्य को भी वह उसी भाव से नमूने के तौर पर आस्वादन कराता रहे जिससे व्यक्ति, परिवार, समाज एव राष्ट्र मे समता का वायु-मण्डल निर्मित हो और राग-द्वेष कलह ककाश की वृत्तियो के शमित होने के साथ ही साथ तनाव ग्रस्त मस्तिष्क शान्ति का अनुभव करे। यह समीक्षण ध्यान के प्रयोग की एक प्रक्रिया है।

समीक्षण साधना की इस प्रक्रिया का मूल तत्व यह है कि साध ाना काल में हमारा ऐसा गहरा अभ्यास हो जाय कि मन की प्रतिकूल परिस्थिति में भी मन उद्वेलित न हो। उसकी समता विचलित न हो। विरोधी-विद्वेषकर्ता को भी साधक समभाव से देख सके। उत्तेजनात्मक परिस्थितियो मे भी मन अनुत्तेजित बना रहे। यही तो साधना का मूल आधार और यही अभ्यास समीक्षण ध्यान के साधना काल मे होना चाहिये।

साधना काल-एक घण्टे तक तो मन स्थिर रहे और वहाँ से उठते ही सामान्य से निमित्तो पर उद्वेलित हो जाय तो उसे साधना की सफलता नहीं माना जा सकता। □□

18. अवस्थान समीक्षण

अवस्थान समीक्षण

विश्व की प्राकृतिक रचना जब दृष्टिपथ पर आती है, तो अनेक तरह की विचार तरगे उद्भूत होती है। लगता है कि इस प्राकृतिक रचना मे कितनी समता, सौम्यता एव सहज–स्वाभाविकता भासित होती है। इसमे विषमता का पुट दृष्टिगत नही होता। पर यह समता एव सरलता चराचर एव जड चैतन्य रूप जगत की प्राकृतिक रचना है। इसका अवलोकन करने वाला चैतन्य देव, इनमे समता की कल्पना कर सकता है। सरलता एव सहजता के भाव को भी शिक्षा की दृष्टि से ग्रहण कर सकता है। जड तत्त्व मे समता, सरलता एव नैसर्गिकता को समझने की योग्यता नहीं है, क्योकि चैतन्य से सम्बन्धित ज्ञान धारा एव उपयोग का कर्तृत्त्व उसमे कतई नही होता। पर चैतन्य देव का भी जो नैसर्गिक स्वभाव है, वह भी एक देशीय उपमा की तुल्यता से समता, सरलता आदि का आधारभूत है।

चैतन्य देव मे चैतन्य शक्ति के साथ–साथ ज्ञान धारा उपयोगादि शक्तियो का कर्तृत्व विद्यमान रहता है। यही तो जड एव चैतन्य की भेद–रेखा का मुख्य हेतु है। पर वर्तमान परिवेश मे चैतन्य देव अपनी स्वाभाविक अवस्था को विस्मृत कर विषमता के दलदल मे फॅस गया है। अतएव उनकी समग्र शक्तियॉ विषमता से अनुरजित हो चुकी है। परिणाम स्वरूप वह प्राय विषमता को ही अपना साथी समझने लगा हे। इसी से ज्ञान–शक्ति अज्ञान के रूप मे एव दर्शन शक्ति मिथ्या दर्शन के रूप मे परिणित हो गई है। जिस वस्तु को जिस रूप मे देखना चाहिये, उस वस्तु को उस रूप मे न देखकर राग से अनुरजित दृष्टि से देखता है। इसके विपरीत अन्य वस्तु को द्वेष के रूप मे देखता है। यद्यपि जानना, देखना एव श्रद्धा करना यह सब चेतन्य–कर्तृत्व मूलक है एव चैतन्य गुण से अनुरजित है। फिर भी पर–पदार्थो की छाया, अज्ञानतावश चैतन्य देव ने अपने रूप मे ले ली

है। यह चैतन्य शक्ति का दुरूपयोग ही कहा जायेगा।

चैतन्य की बाह्य वृत्ति

इसी दृष्टि से चैतन्य देव ने अपनी सहयोगी अन्य चैतन्यात्माओ को देखना प्रारम्भ कर दिया है। परिणामस्वरूप वह साथी एव सजातीयता का सम्बन्ध विस्मृत कर अन्यान्य सम्बन्धो से उनको देखने लगा है। ये सारे सम्बन्ध कृत्रिम एव मन कल्पित होते हैं और इसी कारण चैतन्य देव की प्राय समग्र प्रवृत्ति विषमता मूलक बन गई है। परिणामस्वरूप वह स्वय अपने आप मे उलझने लगा है, तनावग्रस्त होकर चिन्ता रूप चिता मे स्वय को जलाने लगा है। प्राय यही विषमता दु ख एव द्वन्द्व की जननी बन कर चैतन्य देव को परतन्त्र बना रही है। चैतन्य ने इसके अधीन–विकारग्रस्त होकर अपनी स्वतन्त्रावस्था को भुला दिया है और अहर्निश इसी दु ख–द्वन्द्व एव तनाव की अवस्था मे रहता हुआ वह सही दिशा निर्देशन भी नही ले पाता है। न उसकी अपनी विवेक शक्ति जाग्रत हो पाती है, न वह अन्य की परामर्श शक्ति का उपयोग कर पाता है। किकर्तव्यविमूढ होकर चैतन्य देव स्वय के दु ख द्वन्द्व को समाहित करने के लिए बाह्य सम्पत्ति, भौतिक वैभव को सचित करने के लिये अपना जीवन समर्पित कर चुका है। दिन–रात प्रतिक्षण इसी बाह्य वैभव को प्राप्त करने के लिये लगा रहता है। इस लगन मे वह अपने आपकी शक्तियो को इतना सिकोडता है, इसका दुष्परिणाम क्या होगा एव इस प्रकार के विचारो मे उलझे रहने की अवस्था मे अगले जन्म की आयु बँध गयी तो इस महत्वपूर्ण मानव तन की उपलब्धि का क्या होगा? यह इसे खोकर पशु योनि मे गाय, भैस, बैल, कुत्ता, बिल्ली आदि के रूप मे पहुँच जायेगा अथवा विकलेन्द्रिय या स्थावर कायिक जीवो की पर्याय को धारण करेगा, अथवा भयकर क्रूर कर्मो के कारण नरक निगोद का मेहमान होगा, आदि कुछ भी वह नही समझ पाता।

ऐसी असमजसपूर्ण मन स्थिति मे वह स्वय तो दु खित है ही

साथ ही परिवार, समाज, राष्ट्र एव विश्व को भी सपीडित करता है। वह चाहे साक्षात् हो या परम्परा से, किसी रूप मे ही, विश्व के मानवो के लिये कष्टप्रद अवस्था का हेतु बनता है। साथ ही प्रकारान्तर से मान, वे हर प्राणियो का भी अहित एव दु ख सम्पादन करता है।

स्वय की अवस्था को विकृत बनाता हुआ विश्व के समग्र प्राणियो की अवस्था को भी विकृत बनाने मे निमित्त भूत होता है। यह सब विषमता रूप शासक का अभेद्य सा विस्तृत जाल है। इस जाल को समझना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। ऐसी विषमतम परिस्थिति मे चैतन्य देव स्वय की स्वाभाविक समता को–नैसर्गिकता को प्रकट करना तो दूर, समझ ही नही पाता। क्यो कि इस विषम सम्राट् की राजनीति जटिल बनी हुई है। इसी राजनैतिक चक्रव्यूह ने चैतन्य देव को किवा उस समता मूलक विवेक शक्ति को घनघोर कर्मो के रूप मे आवृत कर दिया है।

तीन अवस्थान

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चेतना की अवस्थाओ को मुख्य तीन अवस्थान के रूप मे विभाजित किया गया है। 1 स्थूलावस्थान, 2 सूक्ष्मावस्थान, 3 सूक्ष्मतमावस्थान। उनकी परतो के अन्तर्गत आवरण रूप मे इतनी प्रतर आ गई हैं कि जिनका एकाउण्ट करना अति कठिन बन चुका है। एक प्रकार से वहाँ आवरक पर्तो का भँवर सा बन गया है, जिसके मध्य मे पडने पर निकलना अति दुष्कर होता है। जैसे अनेक बार पानी के प्रवाह मे भँवर बनता है। उस भँवर के बीच कोई वस्तु गिर जाती है तो उसका बाहर आना अति कठिन हो जाता है। चेतन्य पर विषमता का उससे भी अधिक जटिल भँवर बना हुआ है। दूसरे शब्दो मे कहे तो वहाँ एक चक्रव्यूह का रूप बना हुआ है। जैसे अनेक ताडियो वाले दो चक्र अति शीघ्र गति से एक–दूसरे की विपरीत दिशा मे घूमते हैं जिससे कि उन ताडियो के बीच छिद्रो को कोई देख नहीं पाता। कोई एकाग्रचित्त वाला व्यक्ति ही पैनी दृष्टि से उन चक्रो को ताडियो के अन्तर छिद्रो को देखकर निशाना साध

सकता है, साधारण व्यक्ति नही। वैसे ही कोई विरला साधक ही अवस्थानो के अन्तर्गत प्रतर रूप चक्रो के बीच, छिद्रो से परे चैतन्य देव के नैसर्गिक स्वभाव को देखने मे सक्षम हो सकता है।

तीसरी उपमा अलातक चक्र की दी जा सकती है। अलातक चक्र उसे कहते हैं कि एक रस्सी के एक मुँह पर अग्नि की चिनगारी लगा कर कोई बलवान व्यक्ति अति ीघ्रता से उसको गोलाकार रूप मे घुमाता है। देखने वाले को ज्ञात होतो है कि छोर रहित यह आग का चक्र है। कही पर भी इसका छोर दृष्टिगत नहीं होता है। जैसे अलातक चक्र के छोर का पता लगाना दुष्कर है, उससे भी अति दुष्कर स्थिति चैतन्य पर आवृत पर्तो के चक्रो की है। क्योकि पूर्वो के कर्म–चक्रो के उदय रूप मे परिणित होने पर उनके अनुरूप परिणाम बनते हैं। उन परिणामो से पुन वैसे ही कर्म बन्धन होकर चक्र का निर्माण होता है। इस प्रकार परस्पर विपरीत दिशा मे चलने वाले शुभाशुभ परिणामो के फलस्वरूप प्रतर रूपी चक्रो का क्रम बनता है। इस क्रम की प्रतरो के अन्तर्गत अवस्थाओ का अवलोकन अति ही कठिन बन जाता है।

इन चक्रो के मध्य मे अति सूक्ष्म दृष्टि वाला चैतन्य देव अपनी सहज स्वाभाविक–नैसर्गिक दशा को देखने के लिये उद्यमवत बनता है। तब उस साधक चैतन्य के लिये सूक्ष्म दृष्टि के रूप मे समीक्षण ध्यान की अति सूक्ष्मावस्था को प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। उसकी प्राप्ति हेतु उस साधक को सर्वप्रथम इन चक्रो के नवीन आगमन को रोकना नितान्त आवश्यक है। उसकी रूकावट तभी हो सकती है, जबकी वह अपने स्थूलावस्थान रूप स्थूल शरीर को एव उनके साथ सयुक्त इन्द्रिय वर्ग को नियन्त्रण मे ले आवे।

इन्द्रिय वर्ग के प्रधान पॉच अग हैं।

उनका क्रम इस प्रकार है–1 श्रोत्रेन्द्रिय, 2 चक्षुरिन्द्रिय, 3 घ्राणेन्द्रिय, 4 रसनेन्द्रिय, 5 स्पर्शनेन्द्रिय। इन्हीं के साथ सीधा सम्बन्ध

रखने वाला द्रव्य–मन, एव उनके साथ सम्बन्धित भाव–मन है।

समीक्षण-वृत्तियों का

इन्द्रियाँ मन के माध्यम से स्व–स्व के विषय मे प्रियाप्रिय का स्वरूप प्राप्त करने एव परिहार मे तत्पर होती हैं। प्रिय को आसक्ति पूर्वक ग्रहण करना और अप्रिय का विद्वेष के साथ परिहार करने का कार्य सम्पादित होता है। उस अवस्था मे साधक के लिए विषय सम्बन्धी स्वरूप का एव मन की वृत्तियो का सविज्ञान भी अपेक्षित रहता है। क्योकि जब तक इन्द्रियो के विषय से सम्बन्धित वस्तुओ का यथावत् अवबोध नहीं होगा, तब तक उनके प्रति आसक्ति रूप लगाव शिथिल नही होगा और उसके अभाव मे कर्मबन्ध के नवीन सिलसिले को स्थगित किया जाना अति कठिन होगा। अतएव इन्द्रियो के विषय से सम्बन्धित पदार्थों का वास्तविक स्वरूप अनुभूतिपरक प्रज्ञा से ही हो सकता है। उसकी प्रज्ञा का अद्बोधन प्रभु महावीर ने दिया है। यथा–"पण्णासमीक्खए धम्म" प्रज्ञा से धर्म के स्वरूप को सम्यग्रीत्या देखो। इसी प्रकार–"आयत् चक्खु लोग विपस्सी" अर्थात दीर्घ चक्षु से शरीर लोक को विशेष विज्ञान के साथ देखने वाला पुरुष ही स्थूलावस्थानादि तीनो अवस्थानो की स्थूल एव सूक्ष्म सधियो का भलीभाति समीक्षण दृष्टि से अवलोकन कर सकता है।

शरीर समीक्षण

जब चैतन्य देव साधक का रूप स्वीकार कर अन्तर्यात्रा का पथिक बनता है तब वह स्थूल शरीर से सम्बन्धित आवारक कर्मो के समग्र हेतुओ को अनुभूतिपूर्वक जान कर भविष्य के लिये उन हेतुओ की पुनरावृत्ति को रोकता है। तदनन्तर भूतकालीन आवारको के वर्तमान कालिक उदय अवलोकित करने के समीक्षण ध्यान दृष्टि का उपयोग करता है। उसके उपयोग करने मे प्रारम्भिक अवस्था स्थूल, दृश्य शरीर पर साधने की होती है। अत उस स्थूल शरीर के ऊपरी स्वरूप का समभावपूर्वक अवलोकन करते हुए स्थूल शरीर के व्यवहारो

के हेतु भूत भीतरी व्यवहारो का भी विज्ञान करता है किन्तु यहॉ यह स्मरणीय रहे कि इस विज्ञान को सम्पादित करने के लिये अपूर्ण व्यक्तियो का मार्गदर्शन प्राय सफलीभूत नही हो पाता है।

अपूर्ण पुरूष, चाहे कितना भी विद्वान् हो पर उस विद्वत्ता मे सपरिपूर्ण ज्ञान वाले आप्त पुरूषो द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो का अवलम्बन लेकर चितन मनन के साथ उन्हे स्वय के जीवन मे स्थान देने पर उस आचरण की अवस्था मे जो अनुभूति के साथ यदि वह आगे का निर्देशन–सम्मुख रखकर विवेचना करता है तो उस विद्वान् पुरूष की विद्वत्ता ग्राह्य हो सकती है। पर जिन्होने अपनी जिन्दगी मे सम्परिपूर्ण ज्ञानियो की सिद्धान्त पद्धति का सहारा नहीं लिया, और अपूर्ण व्यक्तियो की विभिन्न पद्धतियो का अवलम्बन लेकर जो कुछ भी मन कल्पित लिख दिया, वह ग्राह्य नही हो सकता। क्योकि ऐसी विद्वत्ता जीवन विकास एव योग साधना मे सफल नहीं हो सकती। कदाचित् किसी विद्वान् ने सम्पूर्ण ज्ञानियो के सिद्धान्तो का सहारा भी लिया हो पर साधना विषयक प्रतिपादन प्राय अपूर्ण व्यक्तियो का लिया हो, वह भी भ्रान्तिजनक होता है। अतएव सम्पूर्ण ज्ञानियो के सिद्धान्तो मे जो भी जीवन विकास एव योगसम्बन्धी प्रवधान रहा हुआ है, उसे ही आधार मानकर की जाने वाली साधना समीक्षण साधना है, और वही साधना आत्म शान्ति का अग बन सकती हैं।

शास्त्र वाक्य अथवा आगमिक विषय अति गूढ एव गम्भीर है, जिसको साधारण साधक सागोपाग समझने मे अक्षम है। अथवा उस सारभूत सक्षिप्त सिद्धान्त वाक्यो के रहस्य को एव सिद्धान्तानुकूल विकास सम्बन्धी विषय को समझने मे सक्षम नही बनता हे। ऐसे साधको के जीवन विकास हेतु एव अपनी स्वय की अगली मजिल पर ऊर्ध्वारोहण करने के लिये जो सपरिपूर्ण ज्ञानियो के रहस्य को स्वानुभूति पूर्वक निकाल कर अभिव्यक्त करता है, वह विद्वान् भले ही सपरिपूर्ण ज्ञानी न हो, पर सम्पूर्ण ज्ञानियो के सिद्धान्तो का अवलम्बन लेकर साधना विषयक योग पद्धति की विवेचना करता हे तो वह स्वय

के लिए और अन्य साधको के लिये सर्वथा ग्राह्य बन सकती है।

ऐसा पुरूष कभी एकान्तवादी नहीं बनता है। अत उसकी बुद्धि के द्वारा सदा सर्वदा सत्य तथ्य अद्घाटित होते रहते हैं। ऐसे प्रज्ञा–सम्पन्न साधक के द्वारा की गई विवेचना वीतराग आज्ञा सम्पन्न कही जा सकती है।

आगम अध्ययन–समीक्षण दृष्टि से

प्रस्तुत प्रकरण मे समीक्षण दृष्टि के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा गया है, उसका निष्कर्ष यही है कि साधक उन स्थूल व्यवहारो को समझने के लिए सपरिपूर्ण ज्ञानी, सब कुछ जानने वाला, सब कुछ देखने वाला वितराग देवो द्वारा प्रतिपादित शास्त्र वाक्यो मे आगत विषय को समीक्षण ध्यान सम्बन्धित पद्धति मे प्रवेश करने हेतु ग्रहण करे।

अन्तिम तीर्थेश प्रभु महावीर ने जिन मौलिक सिद्धान्तो का निर्देशन दिया है, वे ही निर्देशन मौलिक रूप मे अन्य समग्र तीर्थंकरो ने दिये हैं। इस विषय मे किसी भी तीर्थकर देव की कोई भी विषमवादिता नही रह सकती।

प्रारम्भ मे कुछ सकेत दिया गया है कि समीक्षण ध्यान का विषय चैतन्य देव से ही सम्बन्धित है न कि जड तत्त्व से।

चैतन्य देव ने पर–पदार्थों की छाया मे अपने पवित्र स्वरूप का विस्मरण कर दिया है। इसी के परिणामस्वरूप वह विश्व मे परिभ्रमण कर विभिन्न पर्याय धारण कर रहा है। उन्हीं पर्यायो के अन्तर्गत मानवीय पर्याय भी हे।

इस पर्याय के अन्तर्गत भी आये आर्य–अनार्यादि अवस्थाओ मे रहने वाले मानवीय पर्याय विश्व मे विद्यमान है। आर्यक्षेत्र एव आर्य सस्कारो मे जिन मानव शरीर धारी चैतन्य देवो का अवस्थान है, उनमे से ही विरली आत्माएँ स्व–स्वरूप की उपलब्धि हेतु ललकवान बन

सकती हैं।

जब इस मानव तन का उपयोग निज स्वरूप की साधना मे करने की दृढ सकल्पपूर्वक तीव्राभिलाषा जागृत होती है, तब वह चैतन्य देव वीतराग देव के सिद्धान्तो का सबल लेकर चलने का प्रयत्न करता है जो साधक अपने समान अन्य पुरूषो को देखता है अथवा विसदृश मानव पर्याय से भिन्न अन्यान्य पर्याय मे रहने वाले चेतन्य देवो की शरीर सम्बन्धी हलन–चलन एव बाह्य व्यवहार की अवस्थाएँ समभाव पूर्वक देखने का अभ्यास करता है वही साधक शनै शनै समीक्षण दृष्टि के स्वरूप का अनुसधान करता हुआ विभिन्न प्राणियो के साथ मूलक दृष्टि का अभ्यासी बन जाता है। तब वह स्वय के शरीर पिण्ड की बाह्य चेष्टाओ के साथ–साथ उनके हेतु भूत समस्त व्यवहारो का अनुशीलन करने के लिए समीक्षण ध्यान की पद्धति को अवश्यमेव अपनाता है।

वह साधक इसी दृष्टिपूर्वक चिन्तन करता है कि वीतराग देव ने केवला लोक मे समग्र प्राणी वर्ग का वर्गीकरण चार गति के रूप मे किया है। यथा–1 नरक गति 2 तिर्यंच गति 3 मनुष्य गति और 4 देव गति।

समीक्षण की योग्यता मानव तन में ही

मनुष्य गति के अतिरिक्त गति वाले प्राणी समीक्षण ध्यान की परिपूर्ण उपलब्धि नहीं कर सकते। उसकी उपलब्धि तो आर्य सस्कारो से सम्पन्न व स्वय के स्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिए तीव्र जिज्ञासावान व्यक्ति ही कर सकता है। वह जब इस साधना मे रत रहने के लिए अग्रसर होता है तो सर्वप्रथम स्वय के शरीर पिण्ड को विषय बनाता है एव यह देखने का प्रयास करता है कि इस प्रकार के पिण्ड की उपलब्धि कैसे हुई? पूर्व जन्म मे इस शरीर पिण्ड के योग्य पुरूषार्थ के परिणामस्वरूप वर्तमान का शरीर पिण्ड इस चेतन्य देव ने धारण किया। अन्य गतियो मे से आकर इस पर्याय के रूप मे इस

शरीर पिण्ड को मातृ कुक्षी मे निर्मित किया। इसी निर्मिति के प्रमुख छ हेतु है। जिनको शास्त्रीय भाषा मे छ पर्याप्ति कहा है। सर्वप्रथम आहार पर्याप्ति रूप मे शास्त्रकारो ने सकेत दिया है।

समीक्षण –शरीर निर्माण की प्रक्रिया का

चैतन्य देव पूर्व जन्म मे सपादित नाम कर्म सम्बन्धी प्रकृतियो को लेकर आता है और माता की कुक्षी मे पहुँच कर शरीर निर्माण सम्बन्धी रज–वीर्य मे से कुछ तत्त्व ग्रहण करता है। जिस शक्ति से गृहीत पुद्‌गलो के खल और रस भाग को पृथक् करता है, उस शक्ति विशेष को आहार पर्याप्ति की सज्ञा से अभिहित किया गया है। तदनन्तर रस भाग का शरीर पिण्ड मे जिस शक्ति के माध्यम से परिणमन होता है वह शक्ति विशेष शरीर पर्याप्ति कहलाती है। तत्पश्चात् इन्द्रिय सम्बन्धी रचना एव अभिवृद्धि जिस शक्ति विशेष से बनती है वह इन्द्रिय पर्याप्ति कहलाती है।

इन्द्रियो के बाद जिस प्रक्रिया से शरीर के अन्तर्गत श्वास–प्रश्वास की गतिविधि विशेष रूप से कार्य करती है। उस प्रक्रिया सम्बन्धी अवयव का जिस शक्ति से निर्माण होता है, वह श्वासोच्छ्‌वास पर्याप्ति कहलाती है। तत्पश्चात् जिन तालवादि सयोगो से शब्द वर्गणा के तत्त्व को ग्रहण कर शब्द रूप मे परिणित कर शब्द व्यवहार की पद्धति का जिस शक्ति के माध्यम से निर्माण होता है, वह है मन पर्याप्ति।

इस प्रकार इस शरीर सरचना मे पर्याप्तियो का कितना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा हुआ है, यह समीक्षण दृष्टि से सहज ही जाना जा सकता है। इन शक्तियो के अन्तर्गत कुछ विशेषावस्था भी निर्मित होती है। वह विशेषावस्था इस शरीर का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्वरूप है। उस अवस्था के रहने पर ही चैतन्य देव इस शरीर सम्बन्धी व्यापारो का यथा स्थान प्रयोग कर सकता है। वह अवस्था शरीर की प्राणभूत अवस्था मानी गयी है। उस अवस्था का कुछ वर्गीकरण

निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

इन्द्रियों की क्रमिकता

इन्द्रिय पर्याप्ति के माध्यम से जिन इन्द्रियो का निर्माण हुआ है, वे इन्द्रियॉ मुख्यतया पॉच है। यद्यपि उन इन्द्रियो की निर्मिति का मुख्याधार शरीर है। शरीर के अन्तर्गत दो विभाग किये जा सकते है--1 त्वचा से सम्बन्धित 2 त्वचा के अतिरिक्त। समग्र शरीर भाग--काया सज्ञा से अभिहित पॉच इन्द्रियो मे से स्पर्शनेन्द्रिय का अधिक व्यापक क्षेत्र है। वह शरीर के इस छोर से उस छोर तक अर्थात् सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त है।

यह इन्द्रियो के क्रमिक विकास की दृष्टि से प्रथम स्थान प्राप्त करती है। इसके पश्चात् क्रमिक विकास रसनेन्द्रिय के रूप मे उभरता है। इसका अति सीमित स्थान है। तत्पश्चात् घ्राणेन्द्रिय जो कि सूघने सम्बन्धी सुगन्धित एव दुर्गन्धित पदार्थो की निर्णायक है। इसी के अन्तर्गत नासिका छिद्र का, श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। तत्पश्चात् चक्षुरिन्द्रिय का प्रसग आता है। जो कि अपने विषय मे विशेष कार्यकारी है और वह समस्त स्थूल, दृश्य पदार्थो का अवलोकन। अन्तिम रूप श्रोत्रेन्द्रिय का विकास होता है।

इस प्रकार पॉच इन्द्रियो से युक्त चैतन्य देव पचेन्द्रिय कहलाता है। इन पॉच इन्द्रियो मे से यथायोग्य विकास की दृष्टि से समग्र विश्व की आत्माऍ पॉच वर्गो मे विभक्त हो जाती हैं। जिस चैतन्य देव के न्यूनतम विकास का प्रसग है, अर्थात् जिसकी चैतन्य शक्ति अति आवृत हे, वैसी आत्मा के लिये एक स्पर्शनेन्द्रिय ही विकासावस्था मे रहती है। उस एक मात्र स्पर्शनेन्द्रिय के विकास से युक्त विश्व मे जितनी भी आत्माऍ हैं, उन आत्माओ को सामान्य रूप से एकेन्द्रिय जाति की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। इसी के अन्तर्गत विशेष भेद प्रभेद एवं अन्यावस्थाऍ सन्निहित है। इस अवस्था से चैतन्य देव विविध रूपो से अधिक विकास के हेतुओ के सयोजनो से युक्त होता है। जब उसे

जातीय अवस्था से विमुक्त होकर रसनेन्द्रिय सहित स्पर्शनेन्द्रिय को पाता है तब वह चैतन्य देव स्पर्श व रसना इन्द्रिय से सम्पन्न जीवन पर्याय को उपलब्ध होने से बेइन्द्रिय सज्ञा को पा लेता है।

इस प्रकार की पर्याय वाली जितनी भी आत्माएँ हैं, वे सभी बेइन्द्रिय जाति रूप वर्ग मे समाविष्ट हो जाती है। इस अवस्था मे रहते हुए अगले विकास के कारणभूत पुण्य कर्मो का उपार्जन होता है, तब उस अवस्था को छोड पूर्व की दो इन्द्रियो के साथ घ्राणेन्द्रिय से सयुक्त होकर त्रिइन्द्रिय मे जन्म ग्रहण कर लेती है तो वह तीन इन्द्रिय वाली पर्याय से युक्त आत्मा त्रि-इन्द्रिय जाति के नाम से पुकारी जाती है। इस अवस्था से अधिक विकास के निमित्त वाले कर्मो से सम्पन्न इस पर्याय को छोडकर चार इन्द्रिय वाले पर्याय मे जन्म ग्रहण करती हैं, तब वह चक्षुरिन्द्रिय सहित पूर्व की तीन इन्द्रियो के साथ चार इन्द्रियो से सम्पन्न पर्याय वाली चतुरिन्द्रिय वर्ग मे सम्मिलित होती है। इस प्रकार की समग्र आत्माए चतुरिन्द्रिय जाति के वर्ग मे समाविष्ट हो जाती है। इन इन्द्रियो सम्बन्धी विकास के सयोजन को उपलब्ध होने वाली आत्माएँ पॉचवी कर्णेन्द्रिय के योग्य कर्मो का सम्पादन कर कर्ण सहित पॉच इन्द्रिय वाली पर्याय के रूप मे आती है, तब उसे पचेन्द्रिय जीव के रूप मे पुकारा जाता है। यही इन्द्रियो सम्बन्धी विकास का अन्तिम विकास कहा गया है। इस प्रकार की जितनी भी आत्माएँ इस विराट् विश्व मे विद्यमान है, उन सबका पचेन्द्रिय जाति रूप पॉचवे वर्ग मे समावेश होता है। यह इन्द्रिय सम्बन्धी विकास पॉच रूपो मे बताया गया है। इनके अवान्तर रूप से विकास की तारतम्यता के अनेक भेद प्रभेद हैं।

यहॉ जिस क्रमिक पद्धति का उल्लेख किया गया है, उसी पद्धति से सभी का विकास हो, यह कोई आवश्यक नियम नही है। इस पद्धति मे व्युत्कर्म का क्रम भी हो सकता है। एकेन्द्रिय से सीधा पचेन्द्रिय मे भी पहुँचा जा सकता है। वैसे ही अन्य इन्द्रियो का भी व्युत्कर्म समझना चाहिये। उपर्युक्त विषय का विशद एव भेद-प्रभेद

युक्त वर्णन वीतराग देव द्वारा उपदिष्ट शास्त्रो मे भलीभॉति विद्यमान है। इस प्रकार की तारतम्यता युक्त आत्मा की अवस्थाओ का इन शताब्दियो के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी सापेक्षस्याद्वाद पद्धति की नयी विधि के साथ तुलनात्मक दृष्टि से समझने की जिज्ञासा रखने वाला साधक यथास्थान समझ सकता है।

उपर्युक्त इन्द्रियो के विश्लेषण से साधना के विषय को समझ लेने के बाद साधक अधिक सुविधा के साथ अन्तर् यात्रा का पथिक बन सकता है।

प्राणों का सर्जन

इन पॉचो इन्द्रियो मे प्राणभूत शक्ति विद्यमान होती है तभी इन पॉचो इन्द्रियो का एव अन्यान्य जीवन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण अगो का सचालनादि व्यापार व्यवस्थित होता है। जहॉ भी प्राण शक्ति के अभाव का प्रसग आता है, वहॉ उससे सम्बन्धित शरीर के अवयव व्यवस्थित कार्य सम्पादन नही कर सकते।

जिस अवयव के साथ प्राणो की सबलता विशेष रूप से हो, उस अवयव का कार्य विशेष सम्पादित होता है। इसी प्राण वल की अवस्था को लेकर पचेन्द्रिय शरीर पर्याय मे दस विभाग किये गये है। उसका स्वरूप उत्कृष्ट इन्द्रिय स्वरूप से समझाया गया है। यह भी एक सुन्दर वैज्ञानिक पद्धति है यथा—प्राण के दो भेद हैं—द्रव्य और भाव।

जैन तत्त्व ज्ञान मे प्राण को समस्त चैतन्य ऊर्जा के सवाहक के रूप मे स्वीकार किया गया है। शरीर मे चैतन्य की अभिव्यक्ति का आभास प्राणो के द्वारा ही होता है। शरीर मे प्राण मुख्य हैं। प्राण निकल गये तो सब कुछ चला गया। फिर इस शरीर की कीमत दो कोडी की रह जाती है। प्राण से ही जीवन है। प्राण से ही मानव है। प्राण से शक्ति, प्राण से दीप्ति, प्राण से आनन्द, प्राण से आरोग्य

प्राण से बलवीर्य, प्राण से सिद्धि और प्राण से लोक–परलोक गमन होता है। इतना ही नही रोग–शोक, चिन्ता, पागलपन, सौन्दर्य, कुरूपता, पुनर्जन्म और जीवन मुक्ति, सब का सम्बन्ध प्राणो से ही तो है।

सभी ज्ञानेन्द्रियॉ और कर्मेन्द्रियॉ प्राणो मे ही तो प्रतिष्ठित है। जैसे रथ के पहियो की नाभी मे आरे लगे रहते है और वे उसी पर आश्रित हैं, उसी प्रकार शरीर, इन्द्रियॉ, बुद्धि, वाणी, मन और श्वासोच्छ्वास सब प्राण के आश्रित हैं। यह प्राण ही शरीर के विभिन्न अगो मे व्याप्त होकर इन्द्रियो एव अवयवो से भिन्न–भिन्न कार्य करवाता है। शरीर को एव उसके समस्त व्यापारो को सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिये यह प्राण ही कार्यकारी होता है, प्राण की इसी कार्यक्षमता को दस रूपो मे वर्गीकृत किया गया है।

समस्त जीवन प्राणो से ही स्पन्दित है। अत समीक्षण ध्यान साधना मे प्राणो को समझना सर्वथा उपयोगी एव आवश्यक हो जाता है।

जीवन व्यवहार मे श्वास–प्रश्वास से ही प्राणो का अधिक सम्बन्ध माना गया है, किन्तु प्राणो का सम्बन्ध इतना सीमित नही है। जीवन की प्रत्येक क्रियान्विति प्राणो से अनुबन्धित है और हमारी समीक्षण साधना जीवन के हर कोण से जुडती है। अत उसमे प्राणो का परिज्ञान बहुत अधिक महत्त्व रखता है।

यहॉ उनका सामान्य रूप ही प्रस्तुत किया जा रहा है। उस प्राण स्वरूप शक्ति के प्रमुखत 10 भेद हैं। पहला भेद श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण के रूप मे लिया गया है। आगे के प्रभेद क्रमश निम्न हैं–(2) चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण (3) घ्राणेन्द्रिय बल प्राण (4) रसनेन्द्रिय बल प्राण (5) स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण (6) मनोबल प्राण (7) वचन बल प्राण (8) काय बल प्राण (9) श्वासोच्छ्वास बल प्राण (10) आयुष्य बल प्राण। इस प्रकार पचेन्द्रिय जाति के अन्तर्गत रहने वाले सज्ञी पचेन्द्रिय चैतन्य देव के शरीर पर्याय के अन्तर्गत उपर्युक्त दस प्राण होते हैं।

अन्तर्यात्रा में बाधक इन्द्रिय विषय

मनुष्य जाति भी इसी परिगणन मे आती है, उनमे भी आर्यकुलोत्पन्न सज्ञी मनुष्य के जीवन का विशेष महत्त्व माना गया है। क्योकि ऐसी पवित्र सस्कृति से सम्पन्न मानव पर्याय मे रहने वाली आत्मा ही हिताहित विवेक के साथ भेद विज्ञान से सम्पन्न बनने की योग्यता रख सकती है। जब चैतन्य देव सम्यक्ज्ञान के साथ चितन मे प्रवेश करता है, तब उसको लगता है कि मेरा इस पर्याय मे आना बहुत ही महत्त्वपूर्ण पुण्योदय एव अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से हुआ है। इस अमूल्यावसर से लाभ उठा कर यदि मै अन्तर्यात्रा का पथिक बन गया तो सदा सर्वदा के लिये वास्तविक परम शान्ति एव परम सुख को एक न एक दिवस अवश्यमेव वर लूगा। यदि पॉच इन्द्रियो के विषय सम्बन्धी लुभावने मोहक जाल मे फस गया तो मेरी दुर्दशा ही होगी और मै समुद्री तट पर पहुँचा हुआ भी पुन ससार समुद्र के मध्य मे जा गिरूँगा।

यह पॉच इन्द्रियो सम्बन्धी विषय मेरी आत्मा ने एक बार ही नहीं, अगणित बार भोग करके अनेक जिन्दगियॉ बर्बाद की है। किन्तु उस दीर्घावधि मे मैं शान्ति एव सुख के समीप भी नहीं पहुँच पाया। यह मेरी आत्मा की कैसी विडम्बना है। आज से पूर्व तक मे इन तथ्यो को पूर्ण रूप से समझ भी नही पाया। इसके परिणाम स्वरूप सदा भटकता ही रहा। किन्तु अब कितनी भी विकट परिस्थिति हो, विघ्न वाधाएँ, ऑधी, तूफान का रूप लेकर आये, पर मै इस पवित्र आध्यात्मिक पथ से कभी भी विचलित नही होऊगा। ऐसी ही दृढ आस्थापूर्वक भेद–विज्ञान का द्वार उद्घाटित कर अन्तर के अलौकिक दिव्य–भव्य रूप मे निवास करने वाले चैतन्य देव की छवि का समीक्षण कर सकूगॉ। इसी भावना के साथ सच्चा जिज्ञासु साधक सच्चे निर्गन्थ गुरू के पास पहुँचता हे तो अवश्य समीक्षण ध्यान के माध्यम से आन्तरिक ज्योति को अभिव्यक्त करता हुआ अद्वितीय साधक के रूप मे स्थापित हो सकता है। □□

13. समीक्षण ध्यान का प्रथम सोपान : लक्ष्य-स्थिरता

समीक्षण ध्यान के माध्यम से अन्तर् पथ के पथिक बनने वाले जिज्ञासु को उपर्युक्त ज्ञान के साथ एतद् विषयक अन्य ज्ञान भी सपादित करना चाहिये। वास्तविक जिज्ञासु को सबसे पहले अपना लक्ष्य बिन्दु निर्धारित कर लेना आवश्यक है। उसके बिना साधना का कोई महत्त्व नही रहता। यदि कोई यह सोचे कि लक्ष्य की अभी क्या आवश्यकता है? पहले मैं अमुक साधना के माध्यम से शरीर के भीतर अवलोकन करूँ। शरीर नाशवान विनश्वर है एव विशर्णशील है। इस भावना से शरीर के अन्दर उत्पाद और व्यय का अवलोकन करू एव वासना विकास कषायो का उन्मूलन करू फिर आगे की ओर कदम रखूगा, तो इस प्रकार का चिन्तन उस व्यक्ति की तरह होगा जो दिन और रात एक क्षण का भी विश्राम किये बिना सारे नगर के प्रमुख बाजारो मे, गलियो मे एव नगर के उपनिवेशो (उपनगरो में) दौडता रहता है और वैसी स्थिति मे उसे कोई पूछे कि तुम क्यो दौड रहे हो? तो वह प्रत्युत्तर देता है कि इसका तो मुझे भी पता नही, किन्तु जितना बल है उतना दौडने मे लगा दू, तत्पश्चात सोचूगा कि मुझे क्या करना हे या क्यो मैं दौड रहा हूँ। एक कॉलेज के विद्यार्थी से पूछा जाय कि तू कॉलेज का अध्ययन किसलिये कर रहा है? वह भी यही प्रत्युत्तर देगा कि इसका तो मुझे पता नही, किन्तु अध्ययन करलूँ, फिर निर्णय करूगा कि अध्ययन क्यो कर रहा हूँ। लगभग ऐसी स्थिति आज कई ध्यान साधको की बन रही है। इस बात की जानकारी कुछ ध्यान साधको से चर्चा के द्वारा प्राप्त हुई।

एक साधक से पूछा गया आप साधना सामायिक आदि करते हे? उन्होने कहा, मे सामायिक की साधना तो नही करता हूँ, किन्तु दो घण्टे तक ध्यान साधना करता हूँ। "आप किसकी ध्यान साधना करते हो?" तो उत्तर मिला कि शरीर मे जो उत्पाद व्यय रूपकपन हो रहा हे, उसे देखता हूँ। प्रति प्रश्न किया गया—"उत्पाद व्यय के अतिरिक्त आप ओर भी कुछ देखते हैं?" उत्तर था "नहीं"। तव उनसे

कहा गया कि आपको ज्ञात है कि उत्पाद व्यय की प्रक्रिया किसमे होती है? वे इसका भी उत्तर नही दे पाये। तब उनसे सकेत किया गया कि आपने जो सिर्फ उत्पाद व्यय की अवस्था शरीर मे देखने का कथन किया वह भगवान महावीर के सिद्धान्तानुकूल नही है। उत्पाद व्यय तो पर्याय है। पर्याय द्रव्य के बिना नहीं रह सकती। द्रव्य का अवलोकन होने पर गुण और पर्याय अवलोकित होते है। गुण और द्रव्य का तादात्म्य सम्बन्ध होता है। गुण से गुणी भिन्न नही रह सकता, वैसे ही गुणी के अभाव मे गुण नहीं रह सकते। उत्पाद व्यय भी द्रव्य के अन्दर समाविष्ट है। अतएव जहा भी उत्पाद व्यय का प्रसग आता है वहा ध्रौव्य की उपलब्धि अवश्य रहती है क्योकि ध्रौव्य त्रिकाल स्थायी होता है। मात्र उत्पाद–व्यय दोनो पर्याये चलती है। अतएव प्रति समय उत्पाद–व्यय एव ध्रौव्य स्वरूप वाला द्रव्य है। साधना मे प्रारम्भ से ही वस्तु स्वरूप का विज्ञान होना चाहिये। तत्त्व को परिणामी द्रव्य मानकर उसी लक्ष्य के अनुरूप साधना की जाती है। वही साधना साधक के लिये फलदायी होती है। यदि द्रव्य को परिणामी नित्य नही स्वीकारा गया तो साधना का कोई महत्त्व नहीं रहता। क्योकि परिणामी द्रव्य के सदा विद्यमान रहने पर ही क्रिया का फल परिणामी नित्य द्रव्य को मिलता हे। यदि द्रव्य ही क्षणभगुर है, सिर्फ उत्पाद व्यय रूप ही हे, तो उसका फल किसी को भी नही मिलेगा।

उत्पाद–व्यय क्रिया है, "या या क्रिया सा सा फलवती।" जब परिणामी नित्य द्रव्य ही नही है तो पर्याय रूप क्रिया का स्वामी कौन है? ऐसी स्थिति मे उत्पाद और व्यय रूप क्रिया स्वामी के अभाव मे निष्फल होगी। साधना से सम्बन्धित जो क्रिया होगी, वह कर्ता के अभाव मे अस्तित्व शून्य होगी।

त्रिकाल स्थायी अस्तित्व की स्वीकृति के बिना साधना फलवती नही होती अतएव किसी साधना का प्रारम्भ लक्ष्य निर्धारण पूर्वक ही होना चाहिये और वह लक्ष्य भी शुद्ध चैतन्य देव के परम एव चरम विकास का होना चाहिये। उसके ध्रौव्य स्वरूप का अनुचिन्तन करते

हुए विकृत पर्याय सम्बन्धी परिमार्जन के अनुसधान के साधना का शुभारम्भ करना चाहिये। वह भले ही अत्यन्त स्वल्प मात्रा मे ही क्यो न हो, किन्तु लक्ष्य का निर्धारण तो अत्यावश्यक है।

साधना का प्रभाव जीवन के व्यवहारों में

साधक को साधना मे तो लक्ष्यानुरूप साधना करनी ही होती है। किन्तु साधना के अतिरिक्त समय मे उठते, बैठते, चलते, खाते–पीते आदि सामान्य दैनिक व्यवहारो के साथ भी लक्ष्यानुचिन्तन इतना स्थायी बन जाना चाहिये कि जिससे रजनी मे भी अर्थात् निद्रावस्था मे भी लक्ष्य का विस्मरण न हो। तभी साधना की सच्ची ललक (जिज्ञासा) कही जा सकती है। यद्यपि साधना मे सहायक शरीर एव शरीर के समस्त अवयवो की सहायता साधना मे ली जाती है। क्योकि साधक का लक्ष्यभूत उपादान स्वरूप चैतन्य देव शरीर मे व्याप्त है। किन्तु शरीर के साथ जो विभिन्न अवस्थान है उन अवस्थानो के अन्तर्गत जितनी भी रूपी, अरूपी इद्रिय ग्राह्य एव इन्द्रियातीत अवस्थाएँ हैं उन सभी का अस्तित्व शरीर प्रमाण क्षेत्र मे विद्यमान है। स्थूलावस्थान, सूक्ष्मावस्थान एव सूक्ष्मतमावस्थान इन तीन अवस्थानो के अन्तर्गत इनकी सधियो एव प्रतरो की परिधि मे चैतन्य देव स्वय कृत कर्मो से लिप्त है। उस लेपन को विलग किये बिना अभीष्ट लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो सकती। दस प्राणो का स्वरूप जो पूर्व मे निर्देशित किया गया है, वे द्रव्य प्राण है एव रूपी सज्ञा से अभिहित है।

भाव प्राण पारिभाषिक दृष्टि से अरूपी कहे जाते है, पर यहा अरूपी का तात्पर्य वर्ण, गन्ध, रस स्पर्शादि से विनिर्मुक्त होने के कारण है, न कि अभाव की दृष्टि से। उनका भी अस्तित्व है, अभाव नहीं। आपेक्षिक दृष्टि से अरूपी शब्द का प्रयोग होता है। किन्तु वह भाव प्राण अरूपी तत्व स्वय के मौलिक स्वरूप मे जहा भी रहता है, वहा उसके मोलिक गुण पर्याय भी रहते ही है। क्योकि वे गुण सूर्य एव सूर्य की किरणो वत् सहभावी है। सूर्य की किरणे सूर्य से सयुक्त रहती है, वसे ही उस अरूपी आत्म तत्व के भाव प्राण रूप गुण आत्म–सयुक्त रहते ह।

आत्मा रूपी भी अरूपी भी

जैसे द्रव्य मन के साथ भाव मन आत्मा की शक्ति विशेष रहती है। द्रव्य मन शरीर व्यापी है, भाव मन भी उसी सीमा के अन्दर है। क्योकि परिणामी आत्मा भी शरीर व्यापी ही है। आत्मिक स्वरूप ही मूल स्वरूप है और अनन्त गुणो का स्वामी है। ज्ञान दर्शनादि उसके मौलिक गुण हैं, किन्तु कर्मो से आवृत होने से वे न्यूनाधिक रूप मे आच्छादित है। मूल मे आत्मा का कर्मदशा से सर्वथा रहित अरूपी स्वरूप है एव उनके निज गुण भी उसी अवस्था मे रहे हुए हैं, किन्तु वह कर्म युक्त होने से कर्म के फलस्वरूप विभिन्न शरीर पर्यायो को धारण करता रहता है। उस समय वह आत्मा रूपी भी कहलता है, क्योकि शरीरादि वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि गुण वाला है और इस शरीर की चेष्टाये आत्मा के रहने पर ही होती है। विभिन्न आत्माओ की अवस्थाएँ इन्द्रिय ग्राह्य साम्व्यावहारिक प्रत्यक्ष के रूप मे मानी गई हैं। अतएव जितनी भी कर्मादि शरीर के पर्यायो से युक्त आत्माएँ हैं, वे रूपी कहलाती हैं।

गौतम स्वामी ने प्रभु महावीर से प्रश्न किया, "रूवी भते ! आया, अरूवी आया?" भगवान् ने फरमाया "गोयमा ! रूवी वि आया, अरूवी वि आया"। "हे गौतम ! आत्मा रूपी भी है और अरूपी भी।"

जब तक आत्मा कर्म नोकर्मादि अवस्थाओ से युक्त है, तब तक रूपी कहलाती है। किन्तु इन अवस्थाओ से सर्वथा रहित होने पर आत्मा सदा सर्वदा के लिए अरूपी अवस्था मे अवस्थित हो जाती है। क्योकि उस अवस्था मे रूपी पदार्थ के लक्षण स्वरूप वर्ण, गन्धादि नहीं रहते। वर्णादि भौतिक तत्त्वो के अन्तर्गत हे। आत्मा उस शुद्ध अवस्था मे अभौतिक स्वरूप मे अवस्थित रहती हे।

आत्मा का संकोच विकास

आत्मा के असख्य प्रदेश जो उसका मौलिक रूप है, वे कभी भी बिखर नही सकते। उन प्रदेशो मे नित्यत्व गुण के साथ-साथ परिणामिकादि गुणो की भी अवस्था पायी जाती हे। सामान्य एव

विशेष रूप से उनमे सर्वगुणो का समावेश होता है और वह सकोच विकासशील स्वभाव वाली होती है। इसलिये अनादिकाल से कर्मो की आवरणयुक्त दशा मे, कभी चींटी के शरीर मे कभी निगोद के शरीर मे अति सकुचितावस्था मे वे ही असख्य प्रदेश समाविष्ट हो जाते है। जब हस्ती आदि शरीर रूप बडी पर्याय प्राप्त होती है तो वे ही आत्मा के असख्य प्रदेश की सीमा मे व्याप्त हो जाते है।

कल्पना करिये हजार–हजार वोल्ट के पॉच बल्ब हैं। उन पॉचो बल्बो मे प्रकाश देने की एक समान क्षमता है। उन पॉचो बल्बो को पॉच विशाल हालो मे अलग–अलग रख दिये जाये तो उन पॉचो का प्रकाश पॉचो हालो को पूरा प्रकाशित करने वाला होता है। उस समय पॉच मिट्टी के बर्तन लिये जाये। एक बडा बर्तन औंधे मुॅह एक वल्ब पर रख दिया जाय, दूसरा उससे छोटा दूसरे बल्ब पर, उससे भी छोटा तीसरे पर, तीसरे से भी छोटा चौथे पर और चौथे से भी और छोटा वर्तन पॉचवे बल्ब पर ढक दिया जाय। उस समय उन पाँच बल्वो का प्रकाश विनष्ट होता है या सकुचित होकर दब जाता है? कहना होगा कि उनका प्रकाश विनष्ट नहीं होता बल्कि पॉचो बर्तनो का जितना घेरा है, उतने घेरे मे सकुचित होकर समाविष्ट हो जाता है। उन बर्तनो का व्युत्कर्म कर दिया जाय तो सबसे बडे बर्तन मे रहने वाला प्रकाश छोटे बर्तन के घेरे मे सकुचित हो जायेगा एव छोटे बर्तन के घेरे मे रहने वाला प्रकाश बडे बर्तन के घेरे मे विकसित हो जायेगा। इसी प्रकार अन्यान्य तरीके से भी घडो का व्युत्क्रम होने पर जिस–जिस घट के नीचे जो जो वल्ब रहेगा, उस–उसका प्रकाश उस घट के पोलार जितने घेरे मे सकुचित एव विकासशील वनता रहेगा। इस कल्पित रूपक से समग्र विश्व की समग्र आत्माओ के सकोच व विकासशील स्वरूप का विज्ञान किया जा सकता है। इन्द्रिय वृद्धि की दृष्टि से जीव का पॉच प्रकार का वर्गीकरण होता है। जिन्हे पॉच जाति कहा है। उन्हे आत्मा रूपी वल्वो के पॉच ढक्कन कहा जा सकेगा। इन शरीरो का जितना ऊॅचा और मोटापन होगा, उतनी ही अवस्था मे आत्मप्रदेश सकुचित एव विकसित होते रहेगे।

इन्द्रिय दृष्टि से पचेन्द्रिय विकास वाली जितनी भी आत्माएँ हैं, उनके अन्तर्गत नरकीय जीव, तिर्यंच योनि मे रहने वाली आत्माएँ, मनुष्य पर्यायगत आत्मा और देव पर्यायगत आत्माओ का समावेश होगा, इनके एव अन्य इन्द्रिय वाले जीवो के बहुत भेद प्रभेद है। यहा प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित शरीर वाले चैतन्य देव का रूपी स्वरूप समझाने की दृष्टि से सक्षिप्त मे झलक मात्र प्रस्तुत की गई है।

प्रस्तुत प्रकरण मे पचेन्द्रिय पर्यायान्तर्गत चार गतियो का निर्देश हुआ है। उनमे चारित्र सम्पन्नता के साथ आत्मा के निर्विकार चरम विकास का प्रावधान है–मनुष्य पर्याय मे रहने वाली सज्ञी पचेन्द्रिय आत्मा मे।

उनमे भी आर्य गुणो से सम्पन्न विशिष्टात्माओ का स्वरूप ही चरम छोर के विकास को छू सकता है, किन्तु वे भी सभी नही, विरलात्माएँ इस प्रकार की क्षमता नरक, तिर्यंच एव देव गति मे रहने वाली पचेन्द्रिय आत्माओ मे प्राप्त नही हो सकती। अतएव उनका प्रस्तुत प्रकरण मे मुख्यतया प्रतिपादन नही है। मुख्य प्रतिपादन तो आर्य सस्कारो आदि से सम्पन्न साधना मे प्रवेश पाने वाली मुमुक्षु साधकात्माओ का है।

कर्मो के विलय की प्रक्रिया समीक्षण

जव विशिष्ट मानव तन की पर्याय मे रहता हुआ चैतन्य देव स्वय को निर्मल बनाने के लिए स्वय के ही द्वारा सत् पुरुषार्थ पूर्वक समता साधना से आप्लावित होता हुआ ज्ञान शक्ति, दर्शन शक्ति, क्षायिक चारित्र रूप शक्ति एव अनन्त वीर्य रूप शक्ति इन शक्तियो को आवृत करने वाले चतुष्कर्म–ज्ञानावर्णीय–परिपूर्ण ज्ञान शक्ति का आवरण करने वाला, दर्शनावर्णीय–दर्शनशक्ति को आच्छादित करने वाला, मोहनीय–आत्मा के क्षायिक भाव रूप यथख्यात चारित्र को अवरूद्ध करने वाला, अनन्त वीर्य रूप शक्ति को ढकने वाला अन्तराय कर्म का विलय चेतन्य देव मानवीय पर्याय रूप शरीर मे रहता हुआ सर्वथा प्रकार से कर देता है, तव इस चेतन्य देव की उपर्युक्त चारो महाशक्तिया

विकसित हो जाती है। उसी ज्ञान शक्ति से लोकालोक स्थित रूपी अरूपी तत्त्वो का भी साक्षात्कार हो जाता है। वैसे अष्ट कर्मो से विमुक्त चेतन्य ही चरम विकास से परिपूर्ण निरपेक्ष सुख एव शान्ति के रूप मे अवस्थित होते है। ऐसे आत्मा के अरूप स्वरूप को भी, अपने केवलालोक मे वह चैतन्य देव शरीर पिण्ड मे रहता हुआ स्पष्टत इन्द्रियातीत ज्ञान से जान एव देख लेता है।

ऐसे केवली भगवन्तो के आयु कर्म से अधिक स्थिति वाले अन्य तीन अघाती कर्म रहते हैं, तब केवली भगवान केवली समुद्घात कर स्वय के आत्मप्रदेशो को सम्पूर्ण लोकाकाश मे फैला देते हैं। उस समय आत्म–प्रदेशो का विकास चौदह रज्वात्मक लोक प्रमाण हो जाता है। यह अवस्था स्वल्प समय ही रहती है। पुन जिस शरीर के परित्याग के पश्चात् मोक्ष जाने वाली होती है, उस शरीर प्रमाण मे व्याप्त हो जाती है।

मुक्ति में आकार

मोक्ष जाने के पूर्व सर्वथा कर्म रहित होने की अवस्था मे शरीर के दो तिहाई भाग की अवगाहना जितनी होती है उतनी अवगाहना मे असख्य आत्मप्रदेश घनीभूत हो जाते है। वह चैतन्य देव उसी घनीभूत अवस्था से लोकान्त मे सदा सर्वदा के लिये अवस्थित हो जाता है। उस अवस्था मे रहने वाली समग्रात्माएँ परिपूर्ण, परिशुद्ध एव परिपूर्ण चरम विकास सम्पन्न बन जाती हैं।

इस प्रकार आत्मा के अविभाज्य असख्य प्रदेश होते हुए भी सकोच विकासशील सान्वय–परिणामी नित्य होते हैं। उन प्रदेशो को कोई भी शस्त्र छिन्न–भिन्न करने मे समर्थ नहीं होते। आग जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता। प्रलयकारी पवन भी उडा नहीं सकता। ऐसे अकाट्य अछेद्य, अभेद्य, अखण्ड, अनन्त ज्ञानादि शक्तियो से सम्पन्न आत्मस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति के पूर्व यह चेतन्य विभिन्न शरीर पर्यायो को धारण करता हुआ चला आ रहा है।

कर्म-फल-भोग में समभाव का समीक्षण

वीतराग देव के सिद्धान्तो का अनुशीलन करने के पश्चात् जब-जब साधक को भलीभॉति यह ज्ञान हो जाता है कि-चैतन्य देव अज्ञानता वश आश्रव द्वारो का सेवन करता है तो उससे कर्मबन्धन होता है।

जो कर्म बॅध चुके है वे यदि निकाचित है तो समय पर ही उदय मे आयेगे एव फल देकर के ही हटेगे। किन्तु जो अनिकाचित हैं, वे समय आने पर तो अवश्य फल प्रदायी बनते ही है, पर सम्यक्ज्ञान पूर्वक साधना मे चलता हुआ साधक उन्हे उदीरणा के द्वारा अवधि के पूर्व ही उदय मे ला सकता है। यदि साधक फल भोग मे भी सम्यक्दृष्टि भाव के साथ समता के आलम्बन पूर्वक कर्मो का फल भोग करता है तो तज्जनित नवीन कर्म का बध नही करता एव शनै शनै पूर्व का फल भोग एव नवीन बधन हेतुओ का अवरोध हो जाने पर वह आत्म-शुद्धि मे अग्रसर बन सकता है।

ऐसा साधक साधना के अनुशीलन के साथ ध्यान की प्रक्रिया मे प्रवेश करता है तो उसके लिये वीतराग देव द्वारा निर्दिष्ट चार ध्यानो का विज्ञान भी प्रारम्भ मे अपेक्षित होता है। उनमे जो दो ध्यान-आर्त्त व रौद्र ध्यान किन निमित्तो से पैदा होते हैं एव जीवन मे केसे स्थान बनाते है, उन हेतुओ का भी वह विश्लेषण करे। उसका सूक्ष्मता से अवलोकन करने हेतु समीक्षण ध्यान का अवलम्बत ले। यथा-प्रिय का वियोग और अप्रिय का सयोग विशिष्ट ज्ञानी के अतिरिक्त कोई नही चाहता।

जव ऐसा होता है तो प्रिय के वियोग को सहन न करने के कारण व्यक्ति आर्त्त ध्यान मे तन्मय होता है। इसी तरह अप्रिय के सयोग को दूर करने के लिये रात दिवस आर्त्त ध्यान मे चिन्तित रहता है। इन दोनो अवस्थाओ मे समीक्षण ध्यान का अभ्यास करने के लिये चिन्तन करे कि जिस शरीर पर्याय को लेकर उसके वियोग मे मैं आर्त्त ध्यान कर रहा हूँ, उस आर्त्त ध्यान के निमित्त आत्मा कर्मबधन करती

है। उन कर्मो का भोग स्वय को ही करना पडता है। ऐसी दशा मे मै आर्त्त ध्यान करूँ? मेरा इतना ही सयोग था। इसलिये इतने समय तक उनके साथ रहने का प्रसग आया। यह सयोग स्थायी तो था नही, क्योकि शरीर पिड अस्थायी है। यह कब विनष्ट हो जाय, कब चला जाय, इसका छद्मस्थ व्यक्ति को ज्ञान नही होता। पर इतना ज्ञान तो अवश्य रहता ही है कि जिसके साथ मे प्रीति कर रहा हूँ उसका सयोग चाहता हूँ अथवा किसी का वियोग चाहता हूँ, यह दोनो अवस्थाये स्थूल शरीर से सबधित हैं।

इसी स्थूल शरीर मे चैतन्य देव रहा हुआ है। उस चैतन्य देव के लिये स्थूल शरीर भी एक प्रकार की पोषाक है। कपडे की पोषाक जीर्ण—शीर्ण हो फट जाती है तो उस पोषाक से विलग होने मे किसी प्रकार का शोक, सताप नही होता, बल्कि एक प्रकार की प्रसन्नता ही होती है कि यह गई तो नई पोषाक का सौभाग्य प्राप्त होगा। वैसे ही स्थूल शरीर सबधी इष्ट के वियोग एव अनिष्ट के सयोग को भी पोषाकवत् समझ कर मुझे समभाव का अवलम्बन लेना चाहिये।

चैतन्य अपना कर्ता स्वयं

चैतन्य देव अपने निजी स्वरूप को सही तरीके से पहचान लेता है तो उसके लिये स्वरूप का ध्यान ही मुख्य रहता है। उसका स्वरूप शरीर की तरह अथवा अन्य जड पुद्गल पिण्ड की तरह जीर्ण—शीर्ण अवस्था को प्राप्त होने वाला नही है। शरीर तो इस आत्मा द्वारा निर्मित किया गया है। अत ज्ञानी आत्माओ के लिये यह खिलौने के तुल्य है। शरीर जीर्ण हो जाय, उस समय आत्मा चाहे तो इस शरीर से भी सुन्दर शरीर रूप खिलोना प्राप्त कर सकती है। वह खिलौना मनुष्य पर्याय की अवस्था मे प्राप्त करना चाहे तो वैसा एव देव पर्याय के रूप मे प्राप्त करने की अभिलाषा हो तो वैसा भी प्राप्त कर सकता है। देव पर्याय रूप खिलौना भी प्राप्त करना इस चेतन्य देव के लिये हाथ की ही वात है, बशर्ते कि वह होश हवाश मे रहे। यदि अधिक जागृति का प्रसग उपस्थित करे तो यथासमय सर्व कर्मो से विमुक्ति का प्रसंग भी आ सकता है। क्योकि चैतन्य देव तो अपनी

मौलिक शक्त्यानुसार सदा सर्वदा परिपूर्ण स्वतत्र अवस्था से सपन्न है।

तीर्थकर देव प्रभु महावीर ने स्पष्ट फरमाया है कि –

"अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्त य दुपट्ठियसुपट्ठिओ।।"

आत्मा स्वय अपने सुख दु ख का कर्ता है, वही स्वय का मित्र है और वही स्वय का शत्रु।

इस प्रकार आत्मा के लिये स्पष्ट उद्‌वोधन है कि वह जैसा चाहे वैसा कर सकती है। यद्यपि निकाचित कर्म अपना पूर्ण प्रभुत्व जमाते हैं। अन्य अनिकाचित कर्म भी उदयावस्था मे आत्मा की विवेक शक्ति को मूर्च्छित करते रहते है। यदि सावधानी नही बरती जाय, उदयजनित कर्म प्रकृतियो के प्रवाह मे प्रवाहित होता हुआ आत्म–देव मूर्च्छित बन जाय एव उदयजनित प्रभाव के परिणाम स्वरूप तदनुरूप क्रियाकलापो को आसक्ति पूर्वक अपना ले तो वर्तमान मे विकसित शक्ति भी दब जाती है एव सरिता के प्रवाह मे बहते हुए पदार्थ की तरह वह भी मोह विकारो की सरिता मे बहता हुआ निगोदादि पर्यायो को भी प्राप्त कर सकता हे। फिर वहाँ से निकलना सहज नहीं होता। फिर यह चैतन्य कभी–कभी तो अनन्तकाल तक उस निगोद के घेरे मे जन्म–मरण की श्रृखला मे आवद्ध हो जाता है। यह अवस्था तो अनादिकाल से चली ही आ रही है। उसमे से निकलना अति दुष्वार है। किन्तु जिस पुरूष ने विवेक विज्ञान प्राप्त किया है वह पुरूष वर्तमान की मानव पर्याय का सदुपयोग करना सीख जाय एव समग्र कर्मो के आवागमन सवधी द्वारो को सम्यक्‌ज्ञान पूर्वक सुदृढ व्रतो की पाल (वाध) से रोककर पूर्व मे सचित पाप को विनष्ट करने मे विविध प्रकार की साधना का सवल लेकर चल पडे एव विविध प्रकार की वाह्य एव आभ्यन्तर तप साधना को यथा शक्ति जीवन मे स्थान प्रदान करदे तो वह पूर्वकृत कर्मों को भी विलय करने मे सक्षम बन सकता है।

कर्म की अवधि आने पर तो उनका उदय के साथ निर्जरण यानी आत्मप्रदेश से अलग होने का प्रसग तो है ही, पर अनिकाचित कर्मो को भी उस अवस्था मे रहते हुए ध्यान साधना से स्थिति घात, इस घातादि गुण श्रेणी आदि द्वारा उन कर्मों का उपभोग शीघ्र भी किया जा सकता है। किन्तु इसके लिये सार्वभौम अहिसादि महाव्रतो को सर्वतोभावेन शक्ति भर आचरण मे लाने का सत्पुरूषार्थ आवश्यक है। सत्पुरूषार्थ के रूप मे भावात्मक अहिसा सत्यादि निजी गुणो को अतीव सत्कार पूर्वक जीवन मे स्थान देना आवश्यक हो जाता है। ऐसा किये बिना नवीन कर्मो का बधन रूक नही सकता। उसकी रूकावट किये बिना नवीन ध्यानादिक साधना कितनी भी क्यो ना की जाय, उसका परिणाम गन्दे गटर के गन्दे पानी के आगमन को रोके बिना जल की टकी को स्वच्छ बनाने जैसा होगा, अर्थात् कोई पुरूष गन्दे जल की टकी को साफ करने के लिये भरसक पुरूषार्थ करता है, पर गन्दे गटर के पानी को विधिपूर्वक दृढता के साथ नही रोकता है तो वह गन्दे जल की टकी त्रिकाल मे भी स्वच्छ नही हो सकती। क्योकि वह एक तरफ सफाई करता है और दूसरी ओर गटर का गन्दा पानी पुन आकर के उसमे गिरता है। जैसे वह टकी साफ नही हो सकती वैसे ही आत्म–रूप टकी साफ नही हो सकती। अतएव ध्यान साधना करने वाले साधको को इस विषय मे समता भाव के साथ गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करना आवश्यक है। आगम उल्लिखित धर्मध्यान एव शुक्ल ध्यान रूप दोनो शुभध्यान इसी समीक्षण ध्यान के ही तो पर्याय हैं।

निष्कर्ष

समीक्षण ध्यान की यह प्रक्रिया अत्यन्त गम्भीर है। शरीर तत्र एव जीव विज्ञान सवधी उपयुक्त जानकारी के अभाव मे इसकी गहराई मे नहीं पहुँचा जा सकता। अतएव ध्यान की विधि–विवेचना मे सवधित अवान्तर विषयो का विश्लेषण किया गया है। □□